वादा

[कहानी-संग्रह]

विषय-सूची

सौ रुपये का एक नोट

भोज समाप्त हो गया। सब मेहमान बिदा हो-होकर चले गये, परन्तु उस नोट का ध्यान न वालाडारिस को आया, न उस युवती को। अगले चार दिन और भी बीत गये; परन्तु वालाडारिस को उस नोट की सुधि इस तरह बिसर गयी जैसे उसने चलते-फिरते, किसी गन्दे कागज के टुकड़े को पाकर कचरे की टोकरी में डाल दिया हो और अब उसके बारे में सब-कुछ भूल गयी हो।

वालाडारिस शहर के इस सुप्रसिद्ध परिवार में केवल बच्चे पढ़ाने का काम करती थी, किन्तु अपने हँसोड़ स्वभाव के कारण इस परिवार के कितने ही मेहमानों से उसकी खासी दोस्ती

[एक

तक थी। उसने दावत वाले दिन को एक ऐसी ही मेहमान युवती का एक सौ रुपये का नोट उसकी पाकेट से मजाक में निकाल लिया था।

पाँचवे रोज सन्ध्या को जब वह किसी काम से बाहर जाने के लिए तैयार हो रही थी, तो उसे अपने चेस्टर की एक जेब में वह नोट पाकर इतना आश्चर्य हुआ कि वह चकित होकर एक कुर्सी पर बैठ गयी।

वालाडारिस की मालिकिन प्रायः बाजार जाते समय उसे भी साथ में ले लिया करती थी। बाजार में उसके नोटों के सँभालने का काम वालाडारिस के ही जिम्मे होता था। यद्यपि वालाडारिस प्रायः हमेशा घर लौटने के साथ ही मालिकिन के उन नोटों को उनके हिसाब के साथ लौटा देती थी, परन्तु कितनी ही बार ऐसा भी हुआ था कि वह नोट दो-दो, चार-चार रोज तक उसके पास ही रह गये थे। उसने यह भरपूर याद करने की कोशिश की कि यह नोट उसकी मालिकिन के किस हिसाब में बाकी रह गया था। परन्तु इधर एक हफ्ते से बाजार जाने का कोई काम ही नहीं पड़ा था और पहले के सब हिसाब उसने कभी के चुका दिये थे। फिर इधर-उधर कुछ क्षण तक दिमाग दौड़ाते रहने के बाद उसे एकाएक उस रोज दावत के दिन वाले नोट की याद आयी। उसका चेहरा जैसे प्रकाश में आकर सहसा चमक उठा। वह एक मुस्क-

राहट के साथ उठी और क्षण भर में कमरे से बाहर हो गयी।

युवती भी एक प्रसिद्ध खानदान की थी। उसमें भी वही अल्हड़पन और वही शाही तबीअत थी जो उस वर्ग के लिए एक बहुत ही स्वाभाविक वस्तु है। उसके लिए एक मामूली सौ रुपये के नोट का ख़याल से उतर जाना कोई ताज्जुब की बात न थी। अभी कुछ ही रोज़ पहले वालाडारिस ने स्वयं अपनी मालिकिन का ही दो हजार का एक कीमती चूड़ियों का सेट लौटाया था, जिसके बारे में वह इस तरह भूल गयी थी जैसे वह सेट उसके पास कभी रहा ही न हो।

युवती प्रायः हर दूसरे-तीसरे दिन इस घर में जरूर आती थी। मगर भोज के दूसरे दिन आकर वह फिर इधर तीन दिन से नहीं आयी थी। अगला दिन रविवार का था, उस दिन उनके घूमने का खास प्रोग्राम होता था। इसलिए कल का आना उसका प्रायः निश्चित-सा था। वालाडारिस ने उस नोट को लौटाने के लिए एक ऐसे मौक़े को ढूँढ़ने की कोशिश की जिससे वह कुञ्चित भौंहों वाली अल्हड़ युवती अपनी लापर-वाही के लिए ज्यादा से ज्यादा शर्मिन्दा की जा सके। साथ ही उसकी ईमानदारी को भी कुछ लोग महसूस कर सकें। अगले दिन सुबह नौ बजे की चाय वाली बैठक उसको सबसे उपयुक्त अवसर जँचा—इस समय उस युवती का भी रंग

देखने लायक होता था, जब वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों के साथ तरह-तरह के नाटकीय स्वाँगों में खूब खुल कर भाग लेती।

वालाडारिस बस-स्टाप पर पहुँच कर बसकी प्रतीक्षा करने लगी। वहाँ अभी कोई दूसरा मुसाफिर नहीं आया था। थोड़ी ही देर में स्कूली लड़कियों का एक झुण्ड आजाद हिन्द फौजके लिए चन्दे इकट्ठा करता हुआ उधर से निकला। उसमें से एक लड़की ने आगे बढ़ कर वालाडारिस के सामने आजाद हिन्द फौज फण्ड का एक छोटा-सा हाथ-बक्स झनकारा। वालाडारिस ने बक्स पर हाथ से लिखे गये बड़े-बड़े अक्षरों पर एक सरसरी निगाह डालते हुए अपना बैग खोला और उसमें से एक अठन्नी निकाल कर बक्स में डाल दी। लड़की ने उसकी शुक्रिया अदा की और उनका झुण्ड आगे बढ़ गया। कुछ क्षण तक वालाडारिस लड़कियों के इस बढ़ते हुए झुण्ड की ओर देखती रही। लड़कियाँ सभी साफ-सुथरी और अच्छे घरानों की जान पड़ती थीं। वह अगले चौराहे से मुड़ कर आँखों से ओझल हो गयीं। परन्तु उनका यह उच्च उद्देश्य वालाडारिस के मस्तिष्क में अब भी मँडराता रहा।

धीरे-धीरे बस-स्टाप पर कुछ और भी मुसाफिर आ गये। परन्तु इनमें किसी से भी उसका परिचय नहीं था।

थोड़ी देर में बस आयी और मुसाफिरों को लेकर आगे बढ़ी। वालाडारिस ने बस में दाखिल होकर चारों तरफ एक निगाह दौड़ाई। बस इस समय तक लगभग पूरी भर चुकी थी। उसमें कोई तीस मुसाफिर रहे होंगे। पर उनमें भी कोई ऐसा मुसाफिर नहीं था जिस से वालाडारिस की थोड़ी-बहुत भी जान-पहचान रही हो। वालाडारिस ऐसे सार्वजनिक स्थानों में पहुँच कर हमेशा एक विचित्र आन्तरिक वेदना अनुभव करती। सड़कों और भीड़ के बाजारों से गुजरते हुए उसे ऐसा लगता जैसे इस भरी-पूरी दुनिया में केवल वही अकेली है।

उसकी यह अनुभूति कभी भी उतनी नहीं खलती थी जितनी कि शाम को टहलने के वक्त। उस समय जब मनोरम स्थलों में तमाम औरतें अपनी सहेलियों या अपने पतियों के साथ चुहलें करती हुई निकलतीं, तब वह उन्हीं के बीच में छोटे-छोटे बच्चों को लिये हुए कभी इसको, कभी उसको और कभी सबको, दबी जबान में दाँत पीस-पीस कर डाँटती और चीखती हुई गुजरती। और रास्ते भर एक भी ऐसा आदमी नहीं मिलता जिससे वह दो-एक भी बातें हृदय की कर सके। जिस वर्ग के लोगों से वालाडारिस का वास्ता पड़ता था, वह उसके स्वयं के धरातल से इतना ऊँचा था कि उनसे कोई सचमुच की दोस्ती कभी सम्भव ही नहीं हो सकती थी।

वालाडारिस अपनी उन धनी सहेलियों से, ऊपर से सब तरह घुली-मिली हुई भी, हृदय से बिलकुल अछूती रह जाती थी। वह अक्सर सोचती, अगर वह किसी स्कूल की अध्यापिका हुई होती तो दस-बीस सहेली अध्यापिकाओं का साथ होता; या कहीं नर्स भी हुई होती तब भी कुछ ऐसे लोगों से काम पड़ता जिनकी समस्याएँ उसी की जैसी होतीं और जिनके बीच में उसे कमसे कम अपने विचारों को तो व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती! पूरे शहर में वालाडारिस की केवल दो ऐसी सहेलियाँ थीं जो उसके सुख-दुख को सचमुच कुछ अच्छी तरह समझ सकती थीं। और यह दोनों एक स्कूल की अध्यापिकाएँ थीं जो साथ ही साथ कांग्रेस की स्वयंसेविकाएँ भी थीं।

बस– कण्डक्टर मुसाफिरों से, आगे की तरफ से, किराये वसूल करता हुआ वालाडारिस के सामने आ खड़ा हुआ। उसने अपना बैग खोला। उसमें से एक दुअन्नी ढूँढ़ कर बस-कण्डक्टर को दी और वह टिकट काट कर आगे बढ़ गया। सहसा उसे याद आया कि वह सौ रुपये वाला नोट अब भी उसके चेस्टर ही के जेब में पड़ा हुआ है। उसे भय लगा, इतना बड़ा नोट कितनी बेमहफूज जगह पड़ा हुआ है! उसने उस नोट को पाकेट से बाहर निकाल कर अपनी जाँघों पर रख लिया। उसे रखने के लिए अपना बैग खोलते हुए उसने

कनखियों से देखा, उसके बगल में बैठा हुआ सिख मुसाफिर उसकी तरफ गौर से देख रहा था। वालाडारिस ने अपने अगल-बगल दोनों तरफ देखते हुए उस नोट को बैग में रख लिया। दूसरी तरफ से भी दो मुसाफिरों की दृष्टि उसी की ओर गयी हुई थी। बैग बन्द कर लेने के बाद उसे ऐसा लगा जैसे आस-पास के बैठे हुए जिन मुसाफिरों ने उसे इस नोट को रखते हुए देखा है उनमें उसके प्रति एक ऊँची धारणा बँध गयी है। इस प्रतिष्ठा में उसकी आत्मा स्वयं भी उन्नत हो उठी।

अगले बस-स्टाप पर बस रुकी। कुछ मुसाफिर, जिनमें उसके अगल-बगल के भी शामिल थे, उतरे और उनकी जगहों पर नये मुसाफिर आकर बैठ गये। पिछली बार जब वह इसी नम्बर की बस से रेती बाजार जा रही थी तो उसकी उन दो सहेलियों में से एक इसी स्टाप पर बस में चढ़ी थी। आगन्तुकों की ओर देखते हुए उसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे बस में अबकी दाखिल होने वाली उसकी वह सहेली ही होगी। परन्तु संयोग को कोई नियम नहीं बाँध सकता।

बस चल पड़ी। वालाडारिस सब नवागन्तुकों को देख लेने के बाद कुछ हताश जैसी हो गयी। उसके मस्तिष्क में फिर वह लोग गुजरने लगे जिनसे उसका रोजमर्राका वास्ता पड़ता था। उसे फिर उस सौ रुपये वाले नोट की याद आयी

जिसे वह कल वाली महफिल में पेश करने वाली थी। उसने सोचा—'हाँ, वह नोट उस युवती को लौटा दिया जायेगा। वह अपना नोट पाकर कितनी खुश होगी! परन्तु वालाडारिस ने अपने ध्यान में फिर देखा कि उस नोट की कीमत के मुकाबिले उस युवती की खुशी उतनी भी नहीं है जितनी कि एक साधारण आदमी की अपनी खोई हुई चवन्नी पाकर हो सकती है। वालाडारिस ने अपने मन में कहा—'और मेरी ईमानदारी की भी जो धाक बन जायेगी, उससे भी क्या ?'

इसी समय उसके मन में ख्याल आया-"क्यों न इस रुपये को आजाद हिन्द फण्ड में दे दूँ ?" आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के प्रति उसकी अपार श्रद्धा थी। उसकी दोनों सहेलियाँ भी इसके लिए नगर कांग्रेस कमेटी की ओर से चन्दे इकट्ठा कर रही थीं। गत रविवार को वह वालाडारिस के पास इसीलिये आयी भी थीं कि वह अपने मालिकों से कुछ चन्दा दिला दे। मगर वह कुछ नहीं कर सकी थी। एक बार उसको यह ख्याल बड़ा उत्तम जँचा। सौ रुपया इन धनिकों के लिए कितनी मामूली चीज है। इसका परिणाम भी एक सक्रिय परिहास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था—इसमें उसे तनिक भी सन्देह नहीं जान पड़ा।

परन्तु वालाडारिस को अभी अपने फैसले में पूर्ण रूप से निश्चित होना बाकी ही रह गया था कि पीछे से बस-कण्डक्टर

किर'किर्र-किर्र'टिकटें काटता हुआ उसके कान के पास आकर खड़ा हो गया। वह कुछ क्षण तक अपने बगल में बैठे हुए मुसाफिरों के अपने जेब से पैसे निकालने और फिर बस कण्डक्टर की 'किर्र-किर्र' टिकट काटने की क्रिया को देखती रही। उसको शहर में निकलने का मौका अक्सर मोटर कार से पड़ता था। फिर भी उसे अपनी हैसियत का हमेशा ख्याल रहता था। उसे जब कभी अकेले बाहर जाने का मौका मिलता तो वह हमेशा ही बस को ज्यादा पसन्द करती थी। बस के इकन्नी-दुअन्नी के टिकटों में उसके वर्ग की आत्मा जैसे छिपी रहती हो।

कण्डक्टर उसकी कतार को छोड़ कर आगे बढ़ गया। वह फिर अपने पूर्व निश्चय पर गौर करने लगी। हाँ, इस सौ रुपये को वह आजाद हिन्द फौज फण्ड में दे देगी, मगर इसका परिणाम! यह जरूर एक उत्तम कार्य था, परन्तु वालाडारिस ही के सौ रुपये से इसका कुछ भी बिगड़-बन नहीं सकता था। इसके लिए तमाम देश की यथा-शक्ति सहायता की जरूरत थी। वालाडारिस की जैसी हैसियत वाले के लिए उसकी अठन्नी ही काफी थी। सौ रुपया!........यह वाला-डारिस के लिए कोई ऐसी रकम नहीं थी जो एक क्षणिक आवेश में आकर इस तरह एक दरिया में फेंक दे।

वालाडारिस को यह न जँचा। उसने फिर, उसे युवती

को लौटा देने वाली बात सोची,—पहले महफिल वाली और फिर उसके घर जाकर अकेले में। परन्तु दोनों में से कोई भी तरीका उसको ज्यादा न जँचा।

वालाडारिस की एक बढ़िया घड़ी और एक हार की बहुत दिनों से इच्छा थी। परन्तु उसके पास कभी इतने ज्यादे पैसे नहीं आये कि वह अपनी इन इच्छाओं को पूरी कर सके। उसके परिवार में एक उसकी माँ थी और एक उसका छः साल का लड़का था। इन दोनों व्यक्तियों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसी के ऊपर थी। उसके पति की मृत्यु शादी के केवल दो ही वर्ष बाद हो गयी थी। पति के मरने के दो साल बाद उसका एक नवयुवक क्लर्क के साथ प्रेम भी हुआ, परन्तु बच्चे की भलाई का खयाल करके उसने फिर शादी नहीं की, यद्यपि यह प्रेम अब भी चलता था। वह जो कुछ कमाती थी वह सब इस परिवार के और अपने व्यक्तिगत खर्चे में ही खतम हो जाता था। पिछले दो साल से वह बड़ी मुश्किलों से लड़के के नाम पर दस रुपया प्रति माह बचा कर सेविंग बैंक में जमा करती थी। और इस तरह, उसकी घड़ी और हारकी इच्छा अभी पूरी नहीं हो सकी थी। परन्तु उसे यह आशा बराबर बनी रहती थी कि एक न एक दिन उसकी इच्छा जरूर पूरी होगी। उसे जब भी कहीं कोई नई डिजाइनका हार नजर आता, वह तुरन्त

उसी के आधार पर अपने भी हार की कल्पना करने लग जाती।

आज भी जब वह बाज़ार से वापस लौटने लगी तो उसने एक लड़की के गले में एक ऐसा ही हार देखा। लड़की एक कारसे उतर कर सामने के दवाखाने में घुस गयी थी। हार न तो बहुत बड़ा था और न बहुत छोटा। उसकी बनावट भी बहुत सीधे-सादे ढंग की थी परन्तु उसकी डिजाइन बिल्कुल नवीन थी। लड़की के खुले गले पर वह हार इतना सुन्दर लग रहा था कि वालाडारिस उसके मोटर से उतरने से लेकर दवाखाने में घुसने तक खड़ी होकर देखती ही रह गयी। हार में कोई कीमती पत्थर या नग भी नहीं जड़े हुए थे। वालाडारिसने उसकी कीमत आँकी। उसकी हैसियत से कोई बहुत ज्यादे की नहीं हो सकती थी। उसकी हिम्मत पहले से भी उतनी तक जा सकती थी। वालाडारिस ने आज तक शायद ही किसी एक हार को उसके मूल रूप में अपने लिये पसन्द किया हो। वह उसमें से कुछ काट-छाँट या इधर-उधर कुछ परिवर्तन कर के ही उसे अपनी कल्पना के अनुरूप बना सकी थी। परन्तु यह हार उसे अपने उसी रूप में पसन्द आ गया। जब लड़की दवाखाने में घुस गयी तो उसे एक बार फिर हार को और करीब से देखने की इच्छा हुई। उसने दवाखाने में घुस कर देखा—वह हार

करीब से भी उतना ही खूब सूरत दीख रहा था जितना कि दूर से। उसने अपने मन में कहा—अगर यह सौ रुपये मेरे होते तो इस डिजाइन का हार मैं आज ही खरीद लेती। फिर वह हताश होकर दवाखाने से बाहर निकल आई।

रात को सोते समय वालाडारिस ने उस नोट के सम्बन्ध में फिर विचार करना शुरू किया। युवती को वापस लौटा देने का ख़याल उसे फिर न जँचा और आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में तो उसे फिर सोचने की भी इच्छा नहीं हुई। उसने कहा—अगर इस रुपये को किसी परोपकार ही में लगाना है तो क्यों नहीं जोज़ेफ (उसका प्रेमी) ही के लिये कोई चीज खरीद दूँ। आखिर वह भी तो एक ग़रीब आदमी है! सौ रुपया........! उसके दिमाग़ में फिर चमका। जोज़ेफ के पास कोई बढ़िया ऊनी सूट नहीं था। परन्तु यह रकम इतनी काफ़ी थी कि उसके लिये एक बढ़िया से बढ़िया सूट तैयार हो सकता था। उसने अपनी कल्पना में देखा कि उस बढ़िया-से ऊनी सूट में जोज़ेफ निहायत सुन्दर लग रहा है; उसकी कृतज्ञता से झुकी हुई आँखों में वालाडारिस का जैसे हृदय नाच उठा! परन्तु ऊनी सूट से उसे एक सोने की चेन वाली घड़ी का खयाल और भी ज्यादा अच्छा लगा।

करवट बदलते हुए उसकी निगाह बगल में पड़ी हुई मेज पर पड़ी। उसे सहसा ख़याल आया कि नौकर क़भी का पानी

रख कर चला गया है; परन्तु उसने अभी तक दवा नहीं पी है। उसने घड़ी में देखा साढ़े दस का वक्त हो रहा था। यह दवा बड़ी कड़वी थी। पार साल यही दवा डाक्टर ने उसके लड़के के लिए बतलाई थी। लड़का दवा नहीं पीता था। वालाडारिस को उसको फुसलाने के लिये कितनी तदबीरें करनी पड़ती थीं, यह उसे आज भी वैसे ही याद था। इस कड़वी दवा को पीने के लिये आज वह खुद अपने को भी बहला रही थी। दवा ढालते हुए उसने सोचा—जोज़ेफ खुद सशक्त है। उसको केवल मेरा ही भरोसा नहीं है। वह खुद भी ऐसे सूट और ऐसी घड़ियाँ ख़रीद सकता है। परन्तु यह निस्सहाय अबोध बालक, जिसका संसार में मेरे सिवाय और कोई आश्रय नहीं! इसकी सहायता क्या मैं इसी लिये नहीं कर सकती कि वह मेरा लड़का है ?

उसने दवा पी ली। बोतल, प्याले और ग्लास को यथावत् स्थान पर रख दिया। फिर कमरे की बत्ती बुझाने के लिये उसने अपना हाथ दीवाल की ओर बढ़ाया। उसका प्रतिबिम्ब एक बार बिजली के दिव्य प्रकाश में उस सामने टँगे हुए शीशे में चमका और फिर गायब हो गया। यह गुजरता हुआ दृश्य वालाडारिस को इतना सुन्दर लगा कि वह एक तीव्र कुतूहल से भर गयी। उसने बटन को फिर दबाया और शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गयी। वह अपने साधारण किन्तु

रंगीन सोने के सूट में किसी ऐसे ही अभिनय-दृश्य में एक सिनेमा-स्टार जैसी खूबसूरत दीख रही थी। सिनेमा-जगत् भी उसकी टूटी हुई उम्मीदों की एक दुनिया थी। उसे अभिनय की विभिन्न मुद्राओं में अपने आपको किसी एकान्त शीशे में देखने का अब भी वड़ा शौक था। वह अक्सर यह देखने का प्रयत्न करती कि अमुक मुद्रा में अगर वह खुद हुई होती तो कैसी लगती। वह शीशे में जब अपनी गर्दन की शोभा पर गौर कर रही थी, तभी एकाएक उसे उस हार की याद फिर आई। उसने अपनी कल्पना में देखा, वह हार उसकी गोरी गर्दन में भी उतना ही सुन्दर लग रहा था जितना कि उस नवयुवती की गर्दन में। उसने हार की कीमत का एक बार फिर अन्दाजा लगाया; फिर उसने उसमें से सौ रुपये घटा कर देखा—बहुत थोड़े और रुपयों की कमी पड़ रही थी। उसकी आँखें एक नई आशा से चमक उठीं।

परन्तु बत्ती बुझा कर बिस्तर पर लौटते हुए उसका हृदय फिर एक शंका से डाँवाडोल हुआ—कितने भुलक्कड़ दिमाग वालों को भी कोई-कोई मामूली चीज़ इस तरह याद रहती है, जैसे उसकी याददाश्त अब उनके जीवन के साथ ही जायेगी। एक रेवा (उसकी एक शिष्या) का उदाहरण उसके सामने मौजूद था। वह बहुत-सी बातों को, खास कर अपनी पढ़ाई और पैसों के सम्बन्ध में तो इस तरह भूल जाती थी जैसे वह

चीज उसके सामने कभी आई ही नहीं हो; परन्तु उसकी वही स्मरण-शक्ति अपने प्यारे खिलौनों के सम्बन्ध में बिल्कुल विपरीत थी। वालाडारिस डरी—उस नोट की याददाश्त उस युवती को कहीं उसी तरह की हुई तो वह कितनी बुरी और निन्दनीय परिस्थिति में फँस जायेगी; या मुमकिन है युवती कहीं उसके ईमान ही की परीक्षा लेना चाहती हो। वालाडारिस ने अपने अन्दर एक ऐसी घबराहट महसूस की कि एक बार फिर वह युवती को नोट लौटा देनेवाली बात सोचने लगी।

दूसरे दिन उसने युवती की दिन भर प्रतीक्षा की। उसकी मालिकिन की महफिल बैठी और उठ गयी। परन्तु वह युवती न आयी। शाम करीब आ गयी। उसने खुद युवती के घर जाने का निश्चय किया। उसने नोट को बटुये से बाहर निकाल कर चेस्टर की भीतर वाली ज़ेब में रखा और घर से बाहर निकल पड़ी।

युवती का घर बहुत थोड़ी दूर पर था। वालाडारिस व्यक्तिगत काम से कभी भी इतनी दूर के लिये किसी सवारी की प्रतीक्षा नहीं करती। वह फुटपाथ पर चलने वाले लोगों में मिल कर कभी किसी झुण्ड से आगे बढ़ जाती थी और कभी किसी से पीछे छूट जाती थी। उसकी धीमी रफ्तार में कभी थोड़ी-सी तेजी आ जाती थी और कभी उससे भी ज्यादे धीमापन आ जाता था। उसके मस्तिष्क की प्रत्येक अवस्था

उसके पैरों में भी जैसे व्यंजित होती जा रही थी। वह दस कदम आगे बढ़ती और अपने परिश्रम की व्यर्थता महसूस कर फिर लौट जाने को सोचती; परन्तु फिर कुछ सोच कर वह आगे बढ़ती।

अन्त में युवती का घर करीब आ गया। उसने अब पीछे लौटने का खयाल छोड़ दिया। परन्तु साथ ही उसका यह निश्चय भी पक्का हो गया कि वह नोट को खुद हरगिज नहीं लौटायेगी। उसका मतलब सिर्फ, युवती से मुलाकात करके यह पता लगाने का होगा कि उस नोट के सम्बन्ध में उसे कोई चीज याद है या नहीं।

वालाडारिस जब युवती के घर से लौटी तो उसका हृदय खुशी से नाच रहा था। वह अब निःशंक रूपसे उस नोट को अपना कह सकती थी। युवती उसके बारे में सचमुच ही एकदम भूल गयी थी। कुछ क्षण के लिये उसकी अन्तरात्मा में एक बार फिर पाप-पुण्य का सवाल उठा। उसके भीतर जैसे कोई पूछ रहा था—वालाडारिस कौन कह सकता है कि तू अपने जिन साथियों का इतना मजाक उड़ाती है उनके स्थान पर यदि खुद हुई होती, तो उनसे भी बढ़ कर जालिम और डाकू नहीं हुई होती? तूने अपनी मालिकिन की चूड़ियाँ लौटा दीं, उसके रुपयों में से कभी एक पैसा भी नहीं छुआ, इसलिये नहीं कि तू बड़ी ईमानदार

थी, बल्कि इसलिये कि तू उन्हें पचाने की क्षमता नहीं रखती थी।

परन्तु दूसरे ही क्षण उसके भीतर की कोई दूसरी शक्ति उसके इन बालक के-से प्रश्नों पर मुस्कराई और वह मुस्कराहट वालाडारिस के होंठों पर भी चमक उठी, वह बड़बड़ाई—'पाप-पुण्य! कौन कह सकता है कि इन बड़े-बड़े महलों की दीवालें पुण्य की नींवों पर खड़ी हैं या पाप की? कौन कह सकता है कि मेरा फर्ज उस अनाथ बालक के प्रति है या पैसे और शक्तियों में लोटती हुई उस युवती के प्रति?'

वालाडारिस ने उमंगों में भर कर एक बार फिर उस हार की कल्पना की; सौ रुपया यह और पचास-साठ रुपये और ऊपर से लगा देने से वह हार आ जाता था। परन्तु उसने फिर अपनी कल्पना में देखा कि सौ रुपये का इतना बड़ा नोट इस तरह कुछ ही मिनटों में केवल उसकी एक मामूली ख्वाहिश के लिए खत्म हो जाना था। उसने अपने अन्दर लोभी की सहज संचयात्मक प्रवृत्ति का एक तीव्र आवेग महसूस किया। उसने हिसाब लगाकर देखा, अगर वह इसे अपने लड़के के नाम पर बैंक में जमा कर देती थी तो उसका जमा दो सौ चालीस से बढ़ कर सहसा तीन सौ चालीस हो जाता था, जो इस तरह अगले दस महीनों में कहीं जाकर पूरा होता। किन्तु उसने सेविंग बैंक में भी जमा करने की

अपेक्षा अपना जीवन-बीमा करा लेना अच्छा समझा। रुपये की कमी के कारण उसका यह काम बहुत दिनों से स्थगित होता आ रहा था।

अपने कमरे में पहुँच कर उसने उस नोट को चेस्टर की जेब से निकाला। बिजली की पीली रोशनी में उसकी आँखें फिर खुशी से नाच उठीं। उसने नोट को होठों से लगा कर चूम लिया। फिर अपने बक्स में एक सुरक्षित जगह पर रख कर बन्द कर दिया।

इसके बाद यदि उसके मन में यह प्रश्न उठता भी कि युवती को कहीं अपने नोट की याद आई और उसने माँगा, तो भी, उसे भय नहीं मालूम होता। 'युवती केवल यही याद कर सकती है कि मैंने उसके पाकेट से वह नोट निकाला था, परन्तु जब मैं उसके प्रश्न पर तरस खाकर उल्टे उसका मजाक उठाने लगूँगी', वह उसी तरह तरस भरी, मजाक उड़ाने वाली मुद्रा की नकल करती हुई सोचती, "तो किसको यह सन्देह हो सकता है कि वह नोट मैंने उसी दिन नहीं लौटा दिया था?" उसे पूरा विश्वास था कि युवती को अपने स्मरण पर कभी पूरा भरोसा नहीं हो सकता।

किन्तु दूसरे दिन वालाडारिस से भेंट होते ही युवती ने बड़े तपाक से कहा—अरे वालाडारिस, मेरा उस रोज वाला नोट लाओ!

वालाडॉरिस की आँखों में न तो वह तरस ही आ सका, न उसका चेहरा ही उस व्यंगात्मक हँसी में सिकुड़ सका, जिसका वह पिछले रोज़ अभिनय कर रही थी। वह केवल एक अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से मुस्कराई और फिर अपने कमरे में चली गई।

उसने जल्दी से उस नोट को बक्स से निकाल कर अपने चेस्टर की जेब में रखा और फिर चेस्टर के साथ ही युवती के पास आ गई। युवती ने फिर उसे देखते ही कहा—'मुझे तो बिल्कुल ही याद नहीं आ रहा था। मैं बार-बार सोच रही थी कि कहीं खर्च हो गया है या किसी को दे दिया है। नौकरों से भी पूछ-ताछ की। मगर कल तुम्हारे लौटने के बाद ही सहसा उस रोज़ वाली बात याद आ गई।'

चेस्टर की जेब से नोट निकालते हुए वालाडारिस ने कहा—"मैं भी तो इसके बारे में बिल्कुल ही भूल गई थी! कल रात को एक पिन ढूँढ़ते समय इसे चेस्टर की इस जेब में पाकर मैं तो बिल्कुल आश्चर्य में भर गई! इधर चार-पाँच दिनों से इसे पहनने का कोई मौका नहीं पड़ा—बाहर ही खूँटी पर पड़ा हुआ था। खैरियत यही हुई कि किसी नौकर-चाकर के हाथ नहीं लगा।"

श्यामा की ईखें

बाँस की जड़ों की ओर, जहाँ से जमीन ऊँची उठने लगती थी, वहाँ एक बूढ़ी औरत बैठी हुई थी। वह एक दम बूढ़ी तो नहीं थी, परन्तु अधेड़ भी नहीं कही जा सकती थी। उसके ठीक ऊपर, बाँस की जड़ों से प्रायः सट कर, एक सत्रह साल का लड़का बैठा हुआ था। बूढ़ी औरत गाँव के लुहार नन्दन के बाप की बातें छेड़े हुए थी। उसके सामने, नीचे की ढाल पर एक लगभग अट्ठारह साल की लड़की और एक और लड़का, उसकी भी उम्र यही कोई सोलह-सत्रह साल की रही होगी, बैठे हुए थे। वह दोनों उस वयस्क औरत की बातों को प्रायः ध्यान से सुन रहे थे। परन्तु ऊपर बैठे हुए लड़के

को उसकी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं आ रही थी। वह चुपके-चुपके उस औरत के सर में लपटौए उलझा-उलझा कर मजे ले रहा था। लड़की इस रुख से बैठी हुई थी कि वह लड़के की इस शरारत को बिल्कुल नहीं देख पा रही थी। दूसरा लड़का देख रहा था। किन्तु उसको उसने इस तरह इशारे कर रखा था कि वह न तो कभी मुस्कराता था और न कभी कोई ऐसी हरकत करता था जिससे उन दोनों का ध्यान उधर जा सके।

इन सभों से हट कर, लगभग पाँच-छः हाथ की दूरी पर एक अधेड़ औरत बैठी हुई थी। इस अधेड़ औरत का ध्यान न तो उस बूढ़ी औरत की ओर था, न उस युवक बालक की ओर।

बाँस की छाया यद्यपि पाकड़ि या बरगद की-सी शीतल और मधुर नहीं होती, फिर भी बन्द और घुटते हुए घरों की अपेक्षा बाँसों की मन्द हवा अत्यन्त सुहावनी मालूम होती है। परन्तु यह अधेड़ औरत, दूर घर होते हुए भी, इस बाँस के तले अक्सर इस लिए छँहाने आती थी कि यहाँ से उसके ईख के खेत की रखवाली भी होती रहती थी। इस गाँव के मवेशियों से वह तंग आ गयी थी—किसी की भैंस, किसी की गाय, किसी का बाछा, किसी का बैल, हमेशा कोई न कोई छूटा ही रहता था।

सामने एक उथली गड़ही, जो जाड़ा खतम होते ही बिल्कुल सूख जाती थी। इस वक्त तो उसमें जमी हुई घास भी सूख-सूख कर भूए-जैसी सफेद हो गयी थी। उसके इस किनारे पर बाँस की यह दो-तीन कोठियाँ और उस किनारे पर दो लम्बे-लम्बे खजूर के पेड़। उसके पार कुछ दूर तक सूखी, सफेद और भूरी-भूरी गेहूँ और अरहर की खूँटियों पर जेठ की दुपहरी चिल-चिल-चिल नाच रही थी। किन्तु इसके बाद ही जमीन का वह पतला-सा चप्पा पड़ता था जो ईख के नन्हें-नन्हें पौदों की हरियाली से लहलहाता हुआ पूरब के कोने में दूर तक निकल गया था। इसी चप्पे में दो खेतों के बाद उस अधेड़ ब्राह्मणी का भी वह छोटा-सा, लगभग आधे बीघे का, खेत पड़ता था, जो तीन तरफ तो ईख के खेतों से घिरा था, परन्तु एक तरफ गाँव से बाहर जाने वाली वह कच्ची सड़क थी जिससे मवेशी पहुँच कर अक्सर उसके खेत को नुकसान पहुँचा दिया करते थे।

वह अधेड़ ब्राह्मणी, जिसे गाँव में सब लोग शामा मतवा कह कर पुकारते थे, कुछ देर तक चुप-चाप बैठी हुई उन खेतों की ओर देखती रही। फिर कुछ सोचती हुई अपने आस-पास देखने लगी। देखते-देखते उसने बाँस की एक सूखी कइनि लेकर जमीन पर हाथी की एक सुन्दर तसवीर खींच दी। ज्यों ही वह बूढ़ी औरत चुप हुई उसने उलट कर

एक बार उसकी ओर और एक बार उसके ऊपर बैठे हुए लड़के की ओर देखा। फिर उस कइनि से ही अपनी बनाई हुई तसवीर को मिटाती हुई उसने अपनी देहाती भाषा में कहा—"मैं सोचती हूँ, मेरी ईखिया कितनी जल्दी जवान हो जाती।"

वह बूढ़ी औरत, वह दोनों लड़के और वह लड़की, सब कहकहे लगा कर हँस पड़े।

वह रोज सुबह और शाम को एक खाँची में कुछ गोबर और कुछ कतवार भर कर अपने खेत पर जाती—मवेशियों से चरे हुए पौधों और कीड़ों के लग जाने से सूख गयी हुई पुआड़ियों को देख कर उसे अपार दुख होता। दूसरे खेतों की अपेक्षा अपने खेत के विरल पौदों को भी देख कर उसका हृदय मसोस उठता। परंतु इस बाँस के तले से उसके खेत की सामूहिक हरियाली कुछ ऐसी ही दीख रही थी जैसी कि आस-पास के दूसरे खेतों की। वह सोचने लगी थी कि यह उसका केवल एक भ्रम हो सकता है कि उसकी ईखें औरों की अपेक्षा कमजोर हैं। वह एक आन्तरिक विह्वलता से चंचल हो उठी थी। और शायद यह इसी आह्लाद की प्रेरणा थी कि उक्त वाक्य उसके मुख से निकल गया था।

कुछ देर तक वह भी उनके साथ हँसती रही। परन्तु ज्यों ही उनकी हँसी कम हुई, उसने फिर कहना शुरू किया—

सोचती हूँ कि ईख बिके तो नाक के लिए एक सोने की कील ले लूँ। गिरो पड़ी हुई अपनी नथ और हाथ के बन्दों को भी छुड़ा लूँ। सबका उधार-तौजा चुका करके एक खूब बढ़िया, झकाझक साड़ी भी जरूर खरीदूँगी।.........मेरे पास रुपये होते तो मैं, ऐसी फटी हुई धोती तो कभी नहीं पहनती। न जाने क्यों, रुपया होते हुए भी लोग फटी धोती पहनते हैं? (उसका तात्पर्य उस ऊपर बैठे हुए लड़के से था, जो एक काफी अच्छे घर का होते हुए भी फटी धोती पहने था।) मैं तो रोज एक-एक धोती बदलती, नये-नये ब्लाउज, नये-नये जम्पर पहनती!.........बिछुओं की झनकार से तो चारों ओर छम-छम हो जाता!

वह कहती जा रही थी और सब लोग खिलखिला-खिलखिला कर हँसते जा रहे थे। एक बात खतम होती, वह भी उनकी हँसी में शरीक हो जाती। वह भी उनके साथ कहकहे लगाने लग जाती। सब लोग उसकी बातों पर हँस रहे थे, वह भी अपनी बातों पर ही हँस रही थी! यह कोई चोरी की बात थोड़े ही थी, सब लोग जानते थे कि वह एक वक्त खाती थी तो दूसरे वक्त की चिन्ता लगी रहती थी।

उस रोज की महफिल टूट गयी थी। ब्राह्मणी श्यामा की और बातें तो वहीं छूट गयी थीं, मगर उसकी ईखों के जवान होने का मजाक गाँव में काफी दिनों तक चलता रहा।

उसी दिन से जब कहीं रुपये-पैसे का कोई जिकर आता तो गाँव वाले हँस कर कहते—अब तो हमारी ईखिया जवान हो ही रही है, अब क्या पूछना है ?

वह भी एक अजीब हँसोड़ औरत थी। यदि उसके सामने कोई वैधव्य की चर्चा छेड़ता तो वह एक विचित्र ढंग से वक्ता को डाँफ कर व्यंग के लहजे में कहती—विधवा हुई तो क्या है ? उसके ऊपर कोई चलता भी तो चलाने वाला नहीं है न ! इस दरवाजे की आड़ में न खड़ी हो, उस खिड़की पर न खड़ी हो, यहाँ न बैठो, वहाँ न उठो, यह नहीं बना, वह नहीं बना !—इन सभों से भी तो छुट्टी मिल जाती है न ? यह आजादी, यह मस्ती, क्या किसी सुहागिन को भी नसीब हो सकती है ?

वह स्वयं भी एक विधवा थी। उसका पति उसके गवन के तीन ही वर्ष बाद चल बसा था। उस समय वह केवल अट्ठारह साल की थी। गोद में एक साल भर के बालक के सिवा उसका और कोई नहीं रह गया था। पति से केवल आधे-आधे बीघे के तीन खेत, तेली और कुम्हार के कुछ घरों की यजमानी, सोने की एक नथ और कुछ और चाँदी के जेवर मिले थे। उसके ऊपर विपत्ति का सहसा एक पहाड़ टूट पड़ा था।

उसके यजमानों ने उसकी मदद की थी। गाँव के दया-

लुओं ने उसके पास सीधे भेजे थे। फिर भी उसके खेत परती रह-रह गये थे, उसके जेवर गिरो पड़-पड़ गये थे। उसके पास न बीज था, न बैल थे, न हल थे, न कोई जोतने वाला था और न कोई बोने वाला था। परन्तु वह खूबसूरत थी और नौजवान थी। उसकी आँखों में हरने की शोभा बस रही थी। जमींदार का एक लड़का उस पर डोरे डालने लगा था। और उसका एक कारिन्दा उसके पीछे-पीछे छाया की तरह चलने लगा था।

वह गाँव भर में बदनाम हो गयी थी। परन्तु अब उसके खेत जोये जाने लगे थे। उसे हल और बैलों की फिकर नहीं करनी पड़ती थी, वह केवल उनकी देख-भाल कर देती थी। उसके लिए नये-नये जेवर भी बनने लगे थे—इनमें सबसे बड़ी जो चीज थी, वह सोने के दो कड़े थे। इसके अलावा चाँदी का एक तौक, झुमके और पायल की जोड़ियाँ थीं। वह जब चौड़ी काली किनारियों की धोतियाँ पहन कर निकलती तो गाँव की सधवाएँ झख मारतीं। वे आपस में उसे रण्डी, पतुरिया, वेश्या आदि कह कर अपने मन में सब्र बाँधतीं। अब उसके भाई भी अकसर उससे मिलने आया करते और वह गाँव में इन जेवरों को अपने भाइयों का दिया हुआ बतलाती।

किन्तु एक साल कारिन्दा से उसका झगड़ा हो गया था।

उसने एक पड़ोसिन के सामने उसे वेश्या कह डाला था और उसके हराम की कमाई खाने का भी खुले शब्दों में ताना मारा था। उसके तन में आग लग गयी थी। उसने उसके और जमींदार के लड़के के दिये हुए सोने और चाँदी के जेवरों पर थूक दिया था। उनकी दी हुई हराम की साड़ियों को चुपके-से रात में उनकी छावनी पर ले जाकर उनके सर पर फूँक आई थी।

उसका लड़का अब सात साल का हो रहा था। वह हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था। वह उसको अत्यन्त प्यार भी करता था। जब कोई पड़ोसिन उससे हँसी कर देती कि तुम्हारी माँ मामा के यहाँ चली गयी तो वह घर के कोने-कोने में घूम कर रोता था। अब वह माँगने पर उसे पानी ले आ देता, आग सुलगाने के लिए बाहर से चुन्नियाँ, बास के पत्ते और सूखी टहनियाँ बटोर लाता। यही नहीं, वह मजदूरों के लिए अपने खेत पर अब कभी-कभी नहारी भी पहुँचा आया करता था। और, जब उसके सर में पीड़ा होती तो वह उसके सर में तेल की मालिश भी कर देता था—एक ऐसी चीज़ जिसका सुख उसको पहले कभी नसीब नहीं हुआ था। वह जब कहीं बाहर से आती तो अपने इस सुन्दर बालक की उठती हुई मांस-पेशियों को देख कर उसकी छाती दुगुनी फूल उठती। वह उस धूर्त और चापलूस कारिन्दे को तो बहुत दिन पहले

ही समझ चुकी थी; किन्तु जमींदार का लड़का उसको एक भला और दयालु आदमी जान पड़ता था। मगर इधर कुछ दिनों से उसे उन दोनों ही से एक तीव्र नफरत हो गयी थी। वह चौड़ी काली किनारी की धोतियाँ, वह सोने और चाँदी के जेवर उसे केवल एक घृणित कैद की चहारदीवारी-से मालूम होने लगे थे। वे केवल उस दाने-जैसे लगने लगे थे जिसे छींट कर चिड़िया फँसा ली जाती है फिर उसके स्वत्व को बरबाद कर दिया जाता है, उसके जीवन को लूट लिया जाता है। जब उसका लड़का कोई नया काम कर ले आता था तो उसका हृदय खुशी से उछल पड़ता था, उसकी आँखें आसमान में फैल उठती थीं, वह यही सोचती—हे भगवान्! यह कब जवान हो जायेगा। और तब उसे वह दिन बहुत दूर नहीं दिखायी पड़ता।

दूसरे, वह अब भी जवान थी। उसकी आँखों में अब भी हरिण की शोभा बसी हुई थी। बल्कि स्वच्छन्दता और खाने-पीने के आराम के कारण उसके गालों का रंग और भी निखर गया था। साथ ही, उसके होठों पर अब एक ऐसी मुस्कुराहट खेलने लगी थी, जो उसके लिए एक मोहिनी मंत्र जैसी साबित हो रही थी। जब वह किसी से बाजार से कोई सौदा लाने को कहती, या अपने बैल के नाँद में दो घड़े पानी डाल देने को कहती, तो कोई ऐसा नहीं था जो 'नाहीं' कर देता।

जब वह कुँए पर पानी भरने जाती तो वहाँ नन्दन लुहार, जो गाँव में तब सबसे बड़ा धनिक समझा जाता था, उसकी ओर अत्यन्त आसक्ति के साथ देखा करता था। इस लिये यह कोई आकस्मिक घटना नहीं हुई थी कि एक दिन उसने, उस घृणित जमींदार के लड़के और उसके नीच कारिन्दे से अपना पिण्ड हमेशा के लिये छुड़ा लिया था।

लेकिन यह बरसों, बरसों पहले की बात थी। अब उसका लम्बा बदन टाँघन घोड़े की एक ठठरी मात्र रह गया था। उसकी हरिण की जैसी आँखों के चारो तरफ सिकुड़न और झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। उसके गुलाबी गालों पर अब चेचक के घने, गहरे-गहरे दाग पड़ गये थे। उसका लड़का भी एक दिन, जब ठीक जवान होने को था, तभी चल बसा था। उसके दवा-पानी के लिए उसने अपने दो खेत रेहन रख दिये थे। उसके श्राद्ध-सस्कार में अपना बैल भी बेच दिया था। उसके गहने भी, जो कुछ थे, सब एक-एक करके गिरो पड़ गये थे। अब उसके पास कुछ नहीं था। सिर्फ आधे बीघे का यही एक खेत और तेली और कुम्हार के कुछ घरों की यजमानी अब भी शेष रह गयी थी। वह कारिन्दा, वह जमींदार लड़का और वह नन्दन लुहार अब भी उस गाँव में थे, परन्तु इनसे अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे उनसे अनजाने से अब दूर हो गये थे। वह अब सिर्फ शामा मतवा रह गयी थी।

लेकिन उसके स्वभाव में अब एक अजीब मसखरापन आ गया था। पर्दा-नशीन दुलहिनें घूँघट के भीतर से किस तरह कनखियों से देख-देख कर मुस्कराती और बातें करती हैं, या पिछली दीवाली को रामनाथ की दोनों नई पतोहुएँ किस तरह फाँड़ बाँध-बाँध कर एक दूसरे को मारने झपट रही थीं—शामा मतवा एक अनूठी छटा उतार देती थी। बोलते वक्त कहाँ से कोई कैसे हकला जाता है, चलते वक्त किसी के पाँव कहाँ से झुक जाते हैं-- वह देखते-देखते गौर कर लेती और उसकी नकल जब चाहिए, तैयार। अपनी इन नकलों के लिए शामा मतवा गाँव भर में मशहूर थी।

लेकिन जिस चीज के लिए शामा मतवा गाँव में सबसे ज्यादा मशहूर थी, वह थे उसके विवाहों के गीत। उसके दाँत अब भी सब साबिक थे और उसके कण्ठ की मनोहरता अब भी ज्यों-की-त्यों थी। इस लिए गाँव में किसी के यहाँ भी शादी पड़ती, शामा मतवा की पूछ जरूर होती। उसके गीतों का भण्डार भी अपार था। उसे जैसे तुलसीदास जी के ऊँचे-से-ऊँचे मंगल-गीत याद थे, वैसे ही छोटी-से-छोटी घृणित 'गारियाँ' और नीच तरह के खेमटे भी याद थे। इस लिए उसकी पूछ बड़े और छोटे, सब घरों में समान रूप से होती थी। इसके अतिरिक्त वह दीवालों पर तरह-तरह के चित्र बनाना, बरातियों के लिए तरह-तरह के पकवान और पूड़ियाँ

बनाना भी खूब जानती थी। इन सब का फल यह होता था कि लग्न के दिनों में दो-तीन महीने तक उसके खाने का काम प्रायः बाहर ही से चल जाता था। यदि अच्छे घरानों में कोई शादी पड़ गयी, तो एक-आध धोती, एक-आध सलूके भी जरूर मिल जाते।

लेकिन इधर लड़ाई की तंगी ने दानियों के भी हाथ सँकेत कर दिये थे। वह हर साल खरीफ की फसल में, अपने खेत में सबसे ज्यादा पैदा देने वाला बेमी का मोटा धान और रब्बी की फसल में जौ-केराई बोती; लग्न के दिनों में रात-रात, दिन-दिन भर शादी के घरों में काम करती और फुर्सत मिल जाती तो कभी-कभी ऊपर से बड़े घरों की कुछ पिसाई का भी काम कर देती; फिर भी उसके पेट-पर्दे दोनों बराबर नहीं पड़ पाते।

परन्तु ईख का पड़ता, आजकल रब्बी या खरीफ की किसी भी फसल से ठीक दुगुना पड़ रहा था। इस लिए, बहुतों की देखा-देखी श्यामा ने भी इस साल अपने खेत में ईख ही बोयी थी। सवाल भरती का था। सो, राममनोहर पाण्डे ने दया-वश सवाई सूद पर बीज दे दिया था। और उसकी ईख बो गयी थी। बाकी, कोड़ाई या सिंचाई के लिए उसने राम पर भरोसा किया था।

और यह सचमुच राम ही की कृपा थी कि उसकी ईखों

की पहली सिंचाई के लिए एक जगह से पाँच रुपये और भी उधार मिल गये थे। लेकिन ईखों के लिए कम से कम तीन पानी और तीन कोड़ाई की जरूरत पड़ती है। कोड़ाई तो वह स्वयं कर लेती थी; नहीं एक दिन में, चार दिन में सही। लेकिन सिंचाई के लिए कम-से कम दो आदमी तो होने ही चाहिए। एक आदमी भी काम चला सकता है, परन्तु उसमें चार-चार दिन तक कुआँ कहाँ से खाली मिलता। गाँव वालों ने एक बार तो दया की, परन्तु दूसरी बार वह फिर दया न कर सके।

इस लिए जब तीसरे पानी का समय आया तो उसकी ईखें पीली पड़ने लगीं। वह रोज रात को सोते समय भगवान से प्रार्थना करती—हे ठाकुरजी आज रात में इतना मेह बरसे कि मेरी ईखों की प्यास हमेशा, हमेशा के लिए बुझ जाय। और रोज वह रात में सपने देखती कि उसकी ईखों में कीचड़ लग गये हैं। लेकिन रोज सुबह को तीखा सूरज उसके हृदय को तोड़ देता।

हताश हो एक दिन उसने घड़े-घड़े पानी भर अपनी ईखों में पहुँचाना शुरू किया। गाँव के लड़के हँसी करने लगे—मतवा ऐसे नहीं, पिचकारियों से भर-भर कर पानी का फुहारा दो, तुम्हारी ईखें जवान हो जायेंगी। लेकिन मजाक में शामा मतवा उनकी चाची थी। वह जैसे रोज इधर-

उधर से गोबर बटोर कर, अपने घर से कूड़े-कतवार इकट्ठा कर खाँची-खाची अपने खेत में डाल आती थी, वैसे ही रोज, जब तक कि सूरज ठीक सर पर नहीं चढ़ आता, घड़े-घड़े पानी भी भर कर अपने ईख के पौदों में डालने लगी। तीसरे पहर सूखे हुए हिस्सों की कोड़ाई कर देती। छोटा-सा खेत, श्यामा ने अपनी ईखों के प्राण बचा लिये।

मानसून शुरू हो गया। झकझोरते हुए बादलों से श्यामा का हृदय प्यासे पीले मेंढकों की तरह फूल-फूल कर घना श्याम हो गया। ईख के नन्हे-नन्हे पौदे केवल पन्द्रह दिनों में बादलों की तरह गरजते हुए आसमान में छा गये। अब सारा काम खतम हो गया। केवल उनकी रखवाली करना शेष रह गया। लेकिन बरसात में सब खेत बो जाने के कारण, मवेशियों का खुले-आम सीवानों में घूमना भी बन्द हो गया। इस लिए उनकी रखवाली की भी अब उतनी जरूरत नहीं रही। दूसरे, श्यामा को यह भी विश्वास था कि गाँव में कोई भी ऐसा निर्दयी न होगा जो उस जैसी एक अपया का खेत चरा देगा।

उसके सामने अब एक ही प्रश्न था। रब्बी की फ़सल न बोने के कारण उसके घर में अब अन्न का एक दाना भी शेष नहीं रह गया था। ईखें कम-से-कम चार महीने बाद से मिल पर गिरनी शुरू होंगी। इन चार-पाँच महीनों तक पेट का

पालना एक बड़ी समस्या थी। इस लिए वह जी-जान से मजूरी-धतूरी करने लग गयी। क्योंकि, वह यह भी जानती थी कि खेतों की बुआई और सोहनी के बाद लगभग एक महीने तक मजदूरी भी मिलनी कोई आसान बात नहीं होती है। लोग दाने-दाने के लिए तरसने लगते हैं।

अबकी साल जब क्वार आया, तो श्यामा की यजमानी से मिला हुआ आधा मन धान, उसकी सात मन की बड़ी डेहरी में, जो हर साल प्रायः भरने-भरने को हो जाती थी, कहीं पेंदी में ही भूल कर रह गया। परन्तु श्यामा को सन्तोष था, उसकी ईखों से प्रायः दुगुना धान मिल जाने वाला था। और फिर जो ईख की पेड़ी रह जाती थी, उससे भी इससे कुछ ही कम अगले साल बिना भरती-भाव के निकल आने वाला था।

देखते-देखते ईखों के नेवान करने का प्रसिद्ध त्यौहार कार्तिक एकादशी आ पहुँची। श्यामा की ईखें आज सचमुच जवान की तरह सिर ऊपर किये हुए खड़ी थीं। वह हर साल इस त्यौहार को मनाती थी। परन्तु इस साल बरसों, बरसों बाद अपने ही खेत से नेवान करने जा रही थी। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था। इसी लिए आज जब उसने अपने छोटे-से आँगन में एकादशी का चौक पुरा, तो वह औरतों के एक तमाशे की चीज बन गयी। वह दिन भर

पड़ोस की औरतों और लड़कों में बैठी हुई कुट्टि और मजाक करती रही। केवल शाम को जब अकेले अपने चौक पर ईख का नेवान करने बैठी तभी उसकी आँखें डबडबा आयीं। उसे ऐसा लगा जैसे कहीं से कोई पुकार रहा हो—माँ!

अब सबकी ईखें मिल पर गिरने लगीं। मिल गाँव से छः मील दूर पड़ती थी। गन्नों का अफसर किसानों को एक समय सिर्फ एक ही गाड़ी की पुर्जी देता था, ताकि मिल पर गाड़ियों का जाम न लगा करे। श्यामा की ईखें लगभग छः गाड़ी की थीं। छः मरतबे मिल पर जाना, रात-रात, दिन-दिन भर वहाँ ठहरना एक औरत के लिए सचमुच एक बड़ी परीशानी की बात थी। इसी लिए, एक बार अफसर के गाँव में आने पर, जब श्यामा गिड़गिड़ा कर उसके पैरों पर पड़ गयी तो, उसने दया-वश उसे तीन गाड़ियों की पुर्जी एक साथ ही दे दी।

श्यामा आज अत्यन्त खुश थी। उसकी आधी ईखें आज मिल पर गिर जायेंगी। बाकी आधी का आधा राममनोहर पाण्डे अपने बीज में ले लेगा। शेष के लिए यदि कोई बड़ी गाड़ी तय हो गयी तो एक ही बार में उसका सारा काम पट जायेगा। गाँव में ऐसी गाड़ियों की बिल्कुल कमी नहीं थी, जो सोलह मन के बदले चौबीस मन लादती हों। आज के लिए उसे तीन गाड़ियाँ भाड़े पर मिल गयी थीं। इनमें दो तो

गाँव ही पर थीं, पर एक जंगल को गयी थी। वह भी आज दोपहर तक जरूर लौट आयेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं था। तीनों गाड़ियाँ आज शाम को एक साथ ही हँक जायेंगी।

श्यामा ने गाँव के कुछ लड़के और लड़कियों को इकट्ठा करके गेंड़ (ईख की पत्तियों) के बदले अपने खेत की आधी से कुछ अधिक ही ईखें कटवा कर दोपहर तक सब छिलवा डाली। उसके नाद पर कौन-से चौपाये भूखे मर रहे थे जिनके लिए गेंड़ों की उसे चिन्ता होती ?

उसने एक दिन और एक रात के लिए पूरे सत्तू पीस कर तैयार कर लिये। कुछ तो बाहर के सफर का खयाल और कुछ आशातीत रुपयों की झनकार—वह आनन्द से बार-बार चंचल हो उठती थी। परन्तु वह गाड़ी दोपहर तक नहीं आयी। उसने गाँव में किसी और भी गाड़ी को तलाश की, परन्तु कोई ठीक न हो सकी। शाम तक दौड़ती रही। लेकिन सब व्यर्थ रहा। तीसरी गाड़ी के आ जाने तक, बाकी गाड़ियों का भी लादना स्थगित कर देना पड़ा।

उसकी ईखें कट और छिल कर दो-तीन कूरों में खेत ही में पडी रहीं। श्यामा ने रात में काफी देर तक उनकी रखवाली की—लड़के भी क्या चाण्डाल होते हैं! उनके लिये धनी-गरीब सब बराबर हैं। कहीं से भी चूसने के लिये ईखें चाहिए। जब जाड़ा भयंकर पड़ने लगा और सर्द हवा हू-हू

कर बहने लगी तो श्यामा अपनी ईख के ढेरों को और भी सूखे पत्तों से ढँक कर, अपनी शीत से भीगी हुई धोती में ठिठुरती हुई घर चली आयी।

सुबह हुई। श्यामा अपनी मैली धोती में हुहुआती हुई, तीसरी गाड़ी को जाँचने के लिए, अपने घर से अभी निकली ही थी कि एक हाँफती हुई लड़की ने आकर कहा—शामा मतवा....आप की ईखें.... चोर उठा गये। श्यामा को विश्वास न हुआ। उसने बाँस के तले से आकर देखा। उसे कुछ दिखलायी न पड़ा। वह दौड़ी हुई खेत पर गयी। ईख के कूरों की जगह उसे सिर्फ सूखे पत्तों के वह ढेर दिखलायी पड़े जिनसे वह रात में ढँक कर घर चली गयी थी।

श्यामा ने एक लम्बी साँस ली। उसे यकायक एक अजीब राहत-सी महसूस हुई। तीसरी गाड़ी को खोजना, फिर ईखों को लदवा कर उन्हें मिल पर ले जाना और फिर पुर्जी भँजाने के समय उस भयंकर भीड़ का सामना करना जिसका किस्सा वह बहुत दिनों से सुनती चली आ रही थी, इन सबसे जैसे उसे यकायक छुट्टी मिल गयी—कुछ ऐसे ही जैसे उसने अपने पति और पुत्र की लम्बी बीमारियों के बाद यकायक एक दिन उनकी मृत्यु से राहत महसूस की थी, जैसे वह झंझटों और पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त हो गयी रही हो।

वह मुँह लटकाये हुए घर लौटने लगी। परन्तु उसके जी

में आता था, खूब जोर-जोर से हँसे, खूब जोर-जोर से उछले। और उसके पाँव उसी आवेश से जैसे गतिमान हो रहे थे—वह बहुत तेज चल रही थी।

परन्तु घर पहुँच कर उसका आवेश सहसा जैसे टूट गया। उसकी खाली डेहरी और उसके महाजनों की रूखी मुद्रा यकायक उसकी आँखों के सामने नाच उठीं। वह फफक-फफक कर रोने लगी। थोड़ी ही देर में चारो तरफ से पड़ोस की औरतें इकट्ठी हो आयीं। मामला सुन कर एक ने अत्यन्त आश्चर्य से कहा—हे भगवान, आज तक ईखों की चोरी नहीं सुनी थी, यह भी क्या धान या गेहूँ का बोझा है जो खेत से उठा ले जाय? दूसरी ने कहा—मत कहो, इस दुनिया के पेट में आग लग गयी है! अभी परसों ही रामधनी बढ़ई का एक सोलह हाथ का बल्ला, जिसको गाड़ी पर लादने के लिए छः आदमी लगे थे, बावली में से निकाल ले गये। बारह आदमी से क्या कम रहे होंगे!

—❀—

पति-पत्नी

हुआ यह था कि उसने उसकी साड़ियों में से एक साड़ी निकाल कर किसी रिश्तेदार की लड़की को, जो आज ही उसके यहाँ से विदा होकर अपने घर जा रही थी, दे देनी चाही थी; जिस पर उसने इतना बड़ा बवाल खड़ा कर दिया था।

वह सोच रहा था—यह सब गलत है। वह शराब नहीं पीता था, दीवाली के दिनों पर भी नहीं। सिगरेट भी नहीं पीता था—कोई चस्का नहीं करता था। यहाँ तक कि खर्च ही के डर से अपने दोस्तों को दावत भी बहुत कम देता था। वह अपनी तनख्वाह का एक पैसा भी अपने पास नहीं

रखता था। सब उसी को, अपनी पत्नी ही को दे देता था। फिर भी उसने इतना बड़ा तूफान खड़ा कर दिया था—सिर्फ एक मामूली-सी साड़ी के लिये !

—यह सब गलत था। वह पत्नी थी। उसके प्रति वह बाध्य था। परन्तु उसको किसी ने पैदा भी किया था, किसी ने पाला-पोसा भी था। किसी ने उसकी बीमारियों में अपनी जिन्दगी की बाजी तक लगा दी थी—क्या इन सबके प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं होता था ?……क्या यह सब पत्नी को भी नहीं समझना चाहिये ?

वह कुछ क्षण के लिये उस खिड़की पर खड़ा रहा। इस बँगले के बगल में सटे-सटे, चार और ऐसे ही, मिल के अफसरों के बँगले थे। परन्तु वह सब, या तो सो गये थे, या बारिश के भय से अपनी-अपनी खिड़कियाँ बन्द कर रक्खी थीं। केवल इसी खिड़की के सामने फूल की क्यारियाँ नीलकाँटे के बाड़े तक धुँधुले-धुँधुले चमक रही थीं। परन्तु बाड़े के पार कम्पाउण्ड से बाहर जाने वाली सड़क, उसके पार फिर नीलकाँटे के बाड़े, फिर फूल की क्यारियाँ, सभी कुछ घने अंधकार में ढँके हुए थे। हवा बन्द थी। बारिश भी थमी हुई थी। झौव्वे, कनेर के पेड़, सभी कुछ उस अंधकार में जैसे थमे हुए थे। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे सारी दुनिया एक गलत रास्ते पर आकर रुक गई है !

परन्तु इसका कोई प्रतिकार नहीं था !—सहसा हवा के एक हल्के झोंके ने उसका चेहरा आर्द्र कर दिया था। उसने सिहर कर अपनी भी खिड़की बन्द कर ली। यह सब सोचना व्यर्थ था। इसका कोई प्रतिकार नहीं था।—उसने इन सारी चीजों को भूल जाने की कोशिश की।

बगल की चारपाई पर उसका तीन वर्ष का एक नन्हा लड़का, इस वक्त गहरी नींद में सो रहा था। परन्तु उसका एक हाथ टेढ़ा होकर उसके बदन के नीचे दब रहा था। उसने बालक के हाथ को निकाल कर उसे सीधा लेटा दिया। फिर स्वयं भी दूसरी चारपाई पर सर से पाँव तक एक चादर से ढँक कर सो रहा।

थोड़ी ही देर में पत्नी आई। उसने कमरे में पहुँच कर, पहले मेज पर बिखरी हुई किताबों को उठा-उठा कर शेल्फ में सजाया, फिर अखबारों को एक जगह और कापियों को एक जगह लगाया। कोने में और चारपाई के नीचे पड़ी हुई दवा और तेल की शीशियों को उठा-उठा कर आलमारी में रक्खा। फिर, एक बार कमरे से बाहर जाकर रात में पीने के लिये पानी लाई, फिर दूसरी बार जाकर बच्चे के लिये दूध लाई।—ऐसा मालूम होता था, जैसे वह खुद भी अब महसूस करने लगी हो कि आज वह जो कुछ कर गई थी, कुछ अधिक हो गया था। परन्तु पति से सीधे कुछ न कह कर अपने कामों

से जैसे यह प्रकट करना चाहती हो—उफ़, मेरा यह जीवन कितना कठोर बीत रहा है! सुबह से शाम तक सारा दिन काम करते-करते बीतता है। रात में देर हो जाती है, सब लोग सो जाते हैं, तब भी मेरे काम पूरे नहीं हो पाते। सबके लिये खाना बनाना, फिर सबको खिलाना-पिलाना, सबके कपड़ों का इन्तजाम करना, सारी गृहस्थी सँभालना—यह क्या कम है? दिन भर एक आदमी तो सिर्फ उस बच्चे ही को सँभालने के लिये चाहिये। उसका (पति का) भाई सीटियाँ बजाता हुआ घर में आता है और फिर सीटियाँ ही बजाता हुआ निकल जाता है। वह बाजार से एक रोज साग तक नहीं ला सकता। इतना मर-मर के काम करना, फिर भी इस घर में कौड़ी तक की इज्जत नहीं!

पति मुँह ढाँक कर चुप-चाप लेटा रहा। शायद पत्नी के इन दिखावों से उसे भीतर ही भीतर कुछ क्रोध भी महसूस होता रहा। परन्तु ऊपर से उसके बदन पर जूँ तक नहीं रेंगी।

अन्त में पत्नी बच्चे को दूध पिलाने के लिये जगाने लगी। उसे उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया। परन्तु उसकी नींद अब भी नहीं टूट रही थी। वह बार-बार उसे एक हाथ से हिलाती, दूसरे हाथ से दूध के ग्लास को उसके होठों से लगाते हुए कहती—मुन्ना यह दूध पी लो,......नहीं पीते

हो ? मैं उठा कर पटक दूँगी,.....पीता है कि नहीं ? परन्तु बच्चे का सर बार-बार टूटे हुए डंठल से फूल जैसे लटक जाता था। पत्नी ने एक बार उसके बदन को जोर से झकझोरा, वह चिल्लाने लगा। फिर तो उसके ऊपर वह क्रोधित शेरनी जैसी टूट पड़ी।

उसके जी में जितना आया, बच्चे को पीटा। मन में जो कुछ आया, बका। परन्तु पति टस-से-मस नहीं हुआ। यह कोई आज ही की बात नहीं थी। वह हमेशा ही ज़रा-ज़रा-सी बात में बच्चे को पीटने लग जाती थी।—यद्यपि वह भीतर ही भीतर घुटता रहा।

पत्नी अपने आप जहाँ तक हुआ, झींकी। फिर अपने आप शान्त हुई। बच्चे को दूध पिलाया और फिर उसे प्यार करती हुई, अपनी गोद में चिपका कर लेट रही।

थोड़ी ही देर में बच्चा सो गया।

कुछ समय और बीता। ऐसा मालूम हुआ कि पत्नी भी सो गई। परन्तु पति को अब भी नींद नहीं आई। बच्चे की लड़खड़ाती हुई तोतली बोली, 'तुमने क्यों माला है ?....कल एक चिलिया मँगा दोगी न ? मैं लामू को नहीं दूँगा, वो मुझको मालता है', देर तक उसके दिमाग में चक्कर काटती रही। और देर तक उसका गला एक भयंकर क्षोभ से घुटता रहा।

तीन बार उसने जबरदस्ती आँखें मूँद-मूँद कर सोने की कोशिश की; परन्तु तीनों बार उसकी आँखें खुल-खुल गईं। काफी देर हो गई। जब दो का वक्त करीब आया, तब भी वह जाग ही रहा था; परन्तु किसी बड़े सुन्दर खयाल में डूबा हुआ था—शायद किसी अत्यन्त शान्त और सुन्दर लड़की के खयाल में। वह मनोरम संसार बसता ही जा रहा था कि सहसा खिड़की पर कुछ खुटपुट हुआ। उसने अपने मुँह से चादर हटा कर देखा—चारो तरफ घना अँधेरा छाया हुआ था। परन्तु उस घने अँधेरे में भी उसने खिड़की पर खड़ी मूर्ति को अत्यन्त साफ-साफ देखा—उसका लम्बा छरहरा बदन, कमान-सी भौंहों वाली बड़ी-बड़ी आँखें, नाक, होंट, ठोड़ी, सुन्दर-सुन्दर पोरों वाली उँगलियाँ, सभी कुछ अत्यन्त साफ़-साफ देखा।

परन्तु बाहर की सर्द हवा उसकी छाती तक में छेद किये जा रही थी। उसने फिर अपना मुँह ढाँक लिया। यह सौन्दर्य और यह कल्पना!—एक क्रूर अट्टहास उसके हृदय में इस ओर से उस ओर तक फैल गया। उसे वह दिन याद आने लगे थे जब वह अपनी इस सुन्दर पत्नी की तुलना सड़क से गुजरने वाली किसी भी सुन्दरी से करके निहाल हो उठता था। वह प्रेम, त्याग और नारीत्व की ऊँची-ऊँची बातें, सभी कुछ उसे अर्थहीन पत्तों की खड़खड़ाहट-सी जान पड़ीं।

थोड़ी ही देर बाद जब पत्नी ने आकर उसके कन्धों को झकझोरा तो उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे अन्दर की सारी घृणा उसके होठों पर काँप रही हो। उसने सिर्फ एक करवट लेकर, सो जाने का स्वाँग किया। मगर पत्नी आप भी उसके बगल में लेट रही। और क्षण भर ठहर कर उसके कंधों को फिर झकझोरा। पति का गुस्सा सहसा एक बार फिर भड़क उठा। परन्तु उसने बड़े धैर्य से अपने आप को रोकते हुए, कहा—इस वक्त मैं कोई बात नहीं कर सकता, तुम सो जाओ।

पत्नी के ऊपर जैसे यह दोहरी मार पड़ी। वह अपने मान को बड़ी कठिनाई से दबा कर पति के पास गयी थी। उठ कर, फिर अपनी चारपाई पर आकर लेट रही। और फफक-फफक कर बच्चों की तरह रोने लगी।

लेकिन पति के ऊपर इसका असर ठीक उल्टा पड़ा। रोना एक ऐसी चीज थी, जिसका असर हमेशा ही उसके ऊपर बुरा पड़ता था। वह भीतर ही भीतर एक तीव्र नफरत से मुस्करा उठा—अच्छा, तो तुम अब मुझे आँसुओं के बल पर जीतना चाहती हो! या यों कहो, प्यार या पश्चात्ताप के बल से नहीं, बल्कि लाठियों के बल से!—अपने दोनों हाथों को छाती पर बाँधे हुए उसे अपना बदन सचमुच ही पत्थर जैसा कड़ा महसूस हुआ।

उसके ठीक बगल वाले कमरे में उसका एक मेहमान सो

रहा था। वहीं कहीं उसका छोटा भाई और एक नौकर भी सो रहे थे। रात के इस समय पत्नी का रोना निश्चय ही एक महान् लज्जा की बात थी। परन्तु पति इससे भी विचलित नहीं हुआ। बल्कि पत्नी की इस बेहयाई पर और भी कठोरता से भरता रहा; यहाँ तक कि पत्नी ने जब एक बार फिर रोते-रोते उसके कन्धों को हिलाना चाहा, तो वह बड़ी मुश्किल से उसकी कोमल कलाइयाँ तोड़ते-तोड़ते रह गया।

पत्नी रो-धो के अब शान्त होने लगी थी। परतु पति अब भी एक भयंकर क्रोध और क्षोभ से बेचैन था—इस चुड़ैल के लिए रोना और चुप हो जाना कितना आसान है! परन्तु इसका असर मुझ पर कितना पड़ता है, यह कभी नहीं सोच सकती।....हे परमात्मा, मेरा यह जीवन कितना दुखी है! इसने मेरे जीवन को किस तरह बन्दी बना रक्खा है! उफ़, यह नहीं होती, तो मैं फौज का कोई बहुत बड़ा कप्तान हुआ होता; या दूर-दूर देशों में मेरे पंख जंगली चिड़ियों के-से स्वतन्त्र होते! लेकिन नहीं, मैं इस साधारण से मिल का एक अत्यन्त अदना इञ्जीनियर हूँ। मेरी हालत एक कैदी से भी बदतर है। जब डाइरेक्टर, वह भैंस की-सी मोटी अकल वाला सेठ, या वह चापलूस मैनेजर मुझ पर आँखें लाल करता है, तो मैं खून के वह घूँट क्यों चुप-चाप पी जाता हूँ?—सिर्फ इसके कारण। अगर यह न होती''''या

अब भी न हो ?....लेकिन नहीं, वह हमेशा रहेगी ! इसके लिये मौत भी कहाँ ? लोग कहते हैं, औरतें कम जीती हैं, परन्तु यह···! हुँ: ज़हर खाने की धमकी देती है, ज़हर !

इसी समय उसके दिमाग में एक और भी खयाल चमका - क्यों न मैं खुद इसे ज़हर दे दूँ ? या····दूर के सूबों में सफ़र करते हुए, रात के वक्त किसी नदी में ढकेल देना; किसी एकान्त पहाड़ी की चोटी से हजारों फीट नीचे खड्ढे में गिरा देना···या कुछ नहीं, सिर्फ इस बिजली के बटन को खोल कर इसकी एक उँगली को कुछ सेकेण्डों के लिए चिपका देना, कितनी आसान बात है ! कौन साबित कर सकता है मैंने अपनी पत्नी को मार डाला है ? और तब यह जीवन कितना स्वतंत्र हो जाता ! किन्तु यह आँधी जैसे खयाल उसके मस्तिष्क में क्षण भर भी न ठहर सके। वह जैसे उठे थे वैसे ही पल भर में उड़ भी गये।

पत्नी अब बिल्कुल चुप हो गई थी। पति सोचने लगा था—क्या उसके अन्दर भी कोई ऐसा ऐब है, जो इन बार-बार के झगड़ों के लिये जिम्मेवार ठहराया जा सके ?

उसका चोर, जैसे उतर रहा था—निश्चय ही अगर वह अपने मिजाज पर थोडा-सा भी काबू पा सका होता, तो यह तूल शाम ही को खतम हो सकता था। 'परन्तु', वह फिर सोच रहा था, 'क्या यह अन्याय के सामने सर झुकाना न

होता ? क्या यह पत्नी का मन बढ़ाना न होता ? मैं गलतियों को हमेशा मानव-स्वभाव का एक अंग समझता हूँ। परन्तु यदि एक ही गलती बार-बार की जाय, उसकी आदत का एक अंग बन जाय तो ?......कुछ बातों को तो मैं इतनी दफे कह चुका हूँ—जैसे यह एक रोने ही का, कि आज वे बाइ-बिल के अक्षरों से भी ज्यादा साफ हैं, उनकी पुनरावृत्ति वेद के मंत्रों से भी अधिक बार हो चुकी है ! परन्तु उसका असर, हमेशा आसमान में हुआ ! काश, यह इन पर थोड़ा-सा भी ध्यान दे सकती ! मैं इसकी गलतियों को कितना क्षमा करता हूँ ! अपने मामलों में यह हवा की तरह स्वच्छन्द है। कहीं मेरे मामलों में भी दखल न देती ! या सिर्फ यही समझ लेती कि मैं जो कुछ करता हूँ, उसमें हम दोनों ही की भलाई निहित है...यह जीवन कितना सुखमय होता।

थोड़ी ही देर बाद दरवाजे की सिटकिनी के गिरने की एक हल्की-सी आवाज हुई। पति ने अनुमान किया, पत्नी शायद अपना मुँह धोने के लिये स्नान-घर की ओर जा रही है। वह ज्यों-का-त्यों अपना मुँह ढके हुए लेटा रहा।

देर हो गई। पत्नी वापस नहीं लौटी। पति यकायक एक शंका से सिहर उठा। उसने अपने मुँह से चादर फेंककर देखा—पत्नी अपनी चारपाई पर नहीं थी। वह जल्दी से उठ कर स्नान-घर की ओर गया; परन्तु पत्नी वहाँ भी नहीं मिली।

उसने किंचित आश्चर्य और भय के साथ सोचा—तो क्या सचमुच इसका इरादा किसी कुँए में कूद कर या किसी ट्रेन के नीचे कट मरने का है ?

तीन बजे की ट्रेन अब आने ही वाली थी। उसने कमरे में लौट कर बिजली जलाई। देखा—चारपाई की एक पाटी पर पैर फेंक कर बच्चा सो रहा था, शेष सारी चारपाई खाली थी। वह क्षण भर के लिये अपना माथा पकड़ कर बैठ गया—निश्चय ही उसमें ट्रेन से कट मरने की हिम्मत नहीं; परन्तु उफ़, इसको जरा भी अपनी इज्जत का खयाल नहीं! इन सोते हुए अफसरों के घर का कोई भी आदमी जागता हो? किसी ने भी यदि इसे, रात के इस समय, देख लिया?····या वह सब सो रहे हों, तो भी फाटक का पहरेदार तो अवश्य ही जागता होगा।····उफ़, कहीं वह चहारदीवारी को फाँदने की कोशिश न कर रही हो? हे भगवान,····कल मैं सारे कस्बे में मुँह दिखलाने लायक न रहूँगा!····और यह बराबरी के अफसर!

वह जल्दी से लपक कर बाहर गया। चारो तरफ भयंकर अंधकार छाया हुआ था। उस अंधकार में उसने पहले तेजी से चल कर फाटक की ओर जाती हुई सड़क को देखा। फिर लौट कर दूर तक झौव्वों और कनेर के पेड़ों को एक-एक करके देखा। लेकिन वह अपने बँगले के समीप ही एक झौव्वे के नीचे बैठी हुई मिली।

झीनी-झीनी झींसी से पति का मुख तर हो गया था। पत्नी की भी साड़ी सिमसिमा गई थी। क्षण भर में पति ने पत्नी को उठा कर अपने आलिंगनों में भर लिया था, उसके होठ उसके होठों को चूमने लगे थे; परन्तु पति अब भी ताज्जुब करता रहा—इफ़, क्या यह भी यह कर सकती है? और उसकी घृणा अब भी भीतर ही भीतर लहरें मार रही थीं—मेरे जीवन को इसने कितना दुखित बना रक्खा है! पत्नी ने, पता नहीं, पति के आलिंगनों की निष्प्राणता को, उसके होठों की ठंढक को महसूस किया या नहीं? शायद वह पति की इस निष्ठुरता, अपने सौन्दर्य, अपने जीवन के इस अपमान को सोचने में इतनी व्यस्त थी कि इस ओर उसका ध्यान ही न गया हो।

हाथी के कंधे पर

भोजपुरी में एक कहावत है—हाथी के कन्हा पर। प्रयोग उस व्यक्ति के लिये किया जाता है जो किसी बड़े आदमी की छत्र-छाया में आकर जिन्दगी के नमक-तेल-लकड़ी वाले कीचड़ से मुक्त हो जाता है।

जब आप ही की स्थिति का कोई आदमी, सहसा पैदल चलना छोड़ कर बड़ी-बड़ी गाड़ियों में चलने लगे, उसके बूटों की पालिश निरन्तर चमकने लगे या उसकी टाइयाँ रोज-रोज बदली हुई दिखलाई पड़ने लगें तो आपका उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाना, एक प्रकार का खार खा बैठना अत्यन्त स्वाभाविक है। इसी लिये इस कहावत के प्रयोग में हमेशा एक अनूठी तीव्रता, एक अनूठा व्यंग भरा रहता है।

[एकायन

परन्तु, इस कहावत का जब भी कहीं कोई प्रयोग करता है, मुझे एक अजीब छोटी-सी कहानी याद आ जाती है।

मैं बहुत छोटा था। हिन्दी मिडिल स्कूल की पाँचवी कक्षा में पढ़ता था। उम्र तेरह साल से ज्यादा की न रही होगी। उस भयंकर विशालकाय जानवर को यकायक सामने पाकर मैं कुछ खुशी और कुछ भय दोनों से भर गया। ऐसी बात नहीं थी कि इसके पहले मैंने हाथी देखा ही न रहा हो। देखा था, बहुतेरी बार देखा था। परन्तु तब मैंने चढ़ने के खयाल से नहीं देखा था।

सोते समय कृष्णमोहन ने कहा था—जानते हो, मेरे ससुर का हाथी पूरे जिले भर में अपना सानी नह रखता! मजाल है, कोई द्वारपूजे में उससे बाजी मार ले जाय! रात में जब-जब मेरी नींद खुली थी, मैं किसी बड़े हाथी पर चढ़ने के स्वप्न से उचक-उचक उठा था। मेरी वह खुशी अब भी ज्यों-की-त्यों थी। परन्तु यकायक मैं जिस भय से सिहर गया, वह यह था—मान लो यह राक्षस जानवर जैसे इस बरगद की डालों को अपनी सूँड़ के झटके से चर्र-चर्र तोड़ कर दाँतों के नीचे दबा लेता है, वैसे ही कहीं अपनी पीठ पर बैठे हुए आदमियों के साथ कर बैठे तो? या जरा-सा पीठ को ऐसे हिला दे; फिर गिरे हुए आदमियों के ऊपर सिर्फ एक-एक पाँव रख दे—सारी पसलियाँ इन बरगद की डालों

ही जैसे चर्र-चर्र बोल जाँय!—मैंने बिगड़े हुए हाथियों की एक से एक भयंकर कहानियाँ सुन रक्खी थीं और वह सब जैसे इसी वक्त मूर्तमान हो उठना चाहती थीं।

लेकिन मैंने अपने आपको ढाढ़स बँधाया—मैं कोई अकेले थोड़े ही चढ़ रहा हूँ! मेरे साथ कृष्णमोहन है। उसका ससुर है। यह पुरोहित जी हैं। फिर यह हाथीवान है।... और फिर यह लोग तो रोज-रोज चढ़ते हैं। कहीं ऐसा होता, तो यही लोग क्यों चढ़ते? यह ससुर, पुरोहित, यह हाथीवान—कोई भी नहीं चढ़ता।

फिर भी मैं जब हाथी पर चढ़ा तो हर्ष और भय दोनों ही के बीच, काँपता हुआ चढ़ा। परन्तु हाथी के चलने के साथी ही मेरा वह सारा भय हवा के एक झोंके जैसा न जाने कहाँ उड़ गया था। मैं हाथी की घंटियों की उस मीठी ध्वनि को सुनने लगा था जिससे सारी दिशायें अब व्याप्त हो रही थीं।

संगीत के उस प्रवाह में तिरते हुए जैसे मैंने एक बार नारायणी के यात्रियों के ताँते को दूर, परले गाँव के झुरमुटों तक देखा। उनकी भड़कीली पोशाकों से वह कच्ची, पगडण्डी सी पतली सड़क, सैकड़ों बल खाती हुई किसी भड़कीले कीड़े की तरह दूर-दूर रेंगती हुई जान पड़ी। कुछ देर पहले हम भी इनके साथ चलते रहे थे। किन्तु वह इतने खूबसूरत हो

सकते हैं, मैं अपनी कल्पना में भी नहीं अनुमान कर सका था। पूरब में कुहरे और धुन्ध को भेद कर सूरज का लाल, बड़ा-सा उठता हुआ गोला; दूर-दूर तक फैलती हुई हरियाली के ऊपर सरसों के पीले-पीले फूल और उस शीत प्रभात की लहरों पर चढ़-चढ़ कर दूर-दूर तक बढ़ती हुई औरतों की, जो जत्थों-जत्थों में गंगा मैया की महिमा गाती चली जा रही थीं, सुमधुर संगीत-लहरियाँ !—मैं अचानक एक नई दुनियाँ देखने लगा था। यह नई दुनियाँ, यह नया दृष्टिकोण अत्यन्त खूबसूरत था, अत्यन्त सुहावना था। क्योंकि, खूबसूरती दूरी में है और इस दूरी का यकायक मैं स्वामी बन बैठा था। यदि मैं पैदल होता तो शीत मेरे तलवों को छन-छन दाग देते; मेरे पाँव ठिठुर जाते। मैं इतनी दूर भी, तब नहीं देख सकता। लेकिन अब मैं उस शीत से बहुत ऊपर पहुँच चुका था। मेरी आँखें अब बहुत दूर-दूर तक देख सकती थीं। इसी लिये, मेरे नीचे चलने वाले लोग मुझे कीड़े-जैसे लगने लगे थे।

मैं सोचने लगा था—यह कृष्णमोहन मुझसे कितनी सच्ची दोस्ती रखता है ! हम लोग बारह लड़के होस्टल से एक साथ ही नारायणी-स्नान के लिये निकले थे। किन्तु उसने किसी को भी नहीं बतलाया कि हम लोग हाथी से जायेंगे। एक-एक करके सबका साथ छोड़ता गया था। अन्त में जब उसके ससुर का गाँव करीब आ रहा तो केवल हमीं दो शेष रह गये

थे। मैं सोच रहा था—यदि मेरी भी शादी किसी ऐसे ही हाथी वाले के यहाँ हुई तो मैं भी इसे जरूर अपने ससुर के हाथी पर ऐसे ही सफर कराऊँगा। और होगी क्यों नहीं, मैं ऐसी जगह शादी ही नहीं करूँगा जहाँ हाथी न हो।

हाथी पर चढ़ते हुए कृष्णमोहन के ससुर ने उससे उसकी तबीयत का हाल पूछा था। और फिर जब हाथी चलने लगा था, तो उसने उसके पिता, माता तथा अन्य घर वालों का कुशल-समाचार पूछा था। मेरे सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही पूछा था—यह बाबू कौन हैं? इसके बाद हाथी के ऊपर कुछ देर के लिये एक गहरी खामोशी छा गई थी। केवल हाथीवान के 'चई धत्-धत्' के अलावा कोई किसी से कुछ नहीं बोल रहा था। मैं उसी खामोशी में यह सब देखने और सोचने लगा था।

लगभग एक मील निकल गये रहे होंगे। अब भी कोई किसी से कुछ नहीं बोला था। केवल कृष्णमोहन अब, जब-तब किसी युवती की ओर देख कर धीरे से मुझे एक इशारा कर देता। अब की बार भी शायद वह ऐसे ही कोई इशारा कर रहा था कि सहसा हमारी पीठ की ओर बैठे हुए उसके ससुर ने एक खँखार के साथ कहा—तो यह बाबू आपके साथ ही पढ़ते हैं?

कृष्णमोहन ने सँभल कर बड़े संयम से कहा—हाँ, हम दोनों एक ही दरजे में पढ़ते हैं।

इतनी देर बाद उसे अपने सम्बन्ध में फिर बातें करते हुए देख कर मुझे तनिक आश्चर्य हुआ—क्या यह तभी से मेरे ही बारे में सोचता रहा है ? फिर मैं किञ्चित हर्ष से सिहर उठा। मैंने सोचा–शायद कहीं मेरी शादी की बात चलाना चाहता हो !

कुछ क्षण के बाद उसने फिर बड़ी नम्रता के साथ पूछा—कौन जात हैं बाबू ?

'ब्राह्मण।'

मैं किञ्चित हतोत्साह हो गया—क्यों न मैं भी इन्हीं की जाति का हुआ।

उस लम्बी मूछों वाले बूढ़े ने फिर कुछ देर ठहर कर कहा—'तो पण्डित जी, यह कोई गलती करते हैं, तो आपको तो रोकना चाहिये।'

मैंने समझा शायद यह पुरोहित जी से सम्बन्ध रखने वाली कोई बात है। परन्तु मेरा यह भ्रम बहुत जल्दी ही दूर होने लगा। वह बूढ़ा फिर कह रहा था—'न किसी से कुछ कहा, न सुना स्कूल से भाग कर सीधे मेला करने चल दिये ! मेले में कहीं खो जायँ, कोई गिरह काट ले या कोई भगा ले जाय ! घर वाले बेचारे अलग हैरान होंगे—लड़का कहाँ चला गया ?...आप पंडित हैं, ब्राह्मण हैं। हमेशा बड़े आदमियों के साथ रहना है। कहीं किसी बड़े आदमी के लड़के को ऐसे भी बहकाया जाता है ?'

अब मैंने समझा वह पण्डित कौन है और वह गलती किसने की है ! मैंने किञ्चित घूम कर अपने साथी की भुजाओं को देखा। वह मेरी अपनी भुजाओं के सामने क्षीण और अत्यन्त दुर्बल जान पड़ीं। और वह, यद्यपि उमर में मुझ से ठीक साल भर का बड़ा था, पर मुझे ऐसा लगा कि वह मुझ से सालों का छोटा है और उसे मैं सचमुच बहका कर लाया हूँ। यह गलती मुझ से कैसे हो गई थी, इस सम्बन्ध में मैंने पिछले रोज की सारी बातों को याद करना ही चाहा था कि मैं फिर कुछ सुनने लगा था।

अब की बार उसका पुरोहित बोल रहा था—'हाँ बाबू, आप ब्राह्मण के लड़के हैं। अभी से आप यदि अपने चाल-चलन को दुरुस्त नही करेंगे, तो आपको कोई भी नहीं पूछेगा। दाने-दाने को मुँहताज हो जायेंगे। क्यों मालिक, मेरा लड़का इनसे कम-से-कम साल भर का तो छोटा होगा ही। लेकिन है विश्वास आपको, ऐसा काम वह कभी कर सकता है ? आपके मन्नन को एक रोज उसने बीड़ी पीते हुए देखा, फौरन आकर मुझसे कहा। फिर भी चैन नहीं पड़ा तो जाकर मलिकाइन जी से भीतर कह आया। पण्डित ब्राह्मण के लड़के का आचरण ही यदि ठीक नहीं हुआ तो उसका गुजर तो एक रोज भी न हो।'

उस नीचात्मा चापलूस पुरोहित की सीख पर मैं आग-बबूला हो उठा। एक बार कुरुखी आँखों से देखा। वह कृष्ण-

मोहन की बगल में, पीछे की ओर पैर लटकाए हुए बैठा था। बोलते-बोलते उसके मुँह में बार-बार थूक भर आता था। जी में आया, इस पतितात्मा को अभी नीचे ढकेल दूँ। परन्तु मैं फौरन ही कृष्णमोहन को देखने लगा था—उस बड़े आदमी के लड़के को। एक बार उसकी कमीज और धोती को देखा और एक बार अपनी भी कमीज और धोती को देखा। मैं मुस्कराने लगा था—यह बड़े आदमी का लड़का, जिसके फीस के पैसे कभी समय से दाखिल नहीं हो पाते, जो मेरे घर से भूने की हँड़िया आते ही भूखे राक्षस की तरह टूट पड़ता था।

लेकिन मैं फिर कुछ सुनने लगा था। और अब की बार यह फिर वही लम्बी मूँछों वाला कृष्णमोहन का ससुर था। पुरोहित जी के बढ़ावे में आकर उसने फिर और क्या-क्या कहा, मुझे इस समय ठीक-ठीक तो याद नहीं; परन्तु इतना अवश्य याद है कि उसने सीधे या टेढ़े 'अवारा' शब्द का भी प्रयोग जरूर किया था। यह भी निश्चित है कि अगर वही शब्द पुरोहित जी के मुख से निकले होते तो मैं उन्हें जरूर हाथी के नीचे ढकेल दिये होता। परन्तु वह बूढ़ा जितनी दफे मुँह खोलता था, मुझमें एक अजीब दहशत छा जाती थी। यह ठीक था. (यद्यपि मेरे घर हाथी नहीं था) मेरे घर वाले उनसे हैसियत में किसी तरह कम न थे और उनके पुरोहित जैसे

मेरे भी दो-चार पुरोहित थे; यह भी ठीक था कि यदि बहका ही लाने का सवाल था तो यह उसका दामाद ही हो सकता था जिसने हाथी का लालच देकर मुझे बहकाया था; फिर भी न जाने क्यों उस बूढ़े से मेरी रूह काँपने लगी थी। मैं एक बार भी उसकी किसी बात का जवाब न दे सका।

बैठने के सम्बन्ध में यद्यपि उसने सिर्फ इतना ही एक बार कहा था—'पडित जरा खिसक कर बैठो' परन्तु रास्ते भर मुझे ऐसा भय मालूम होता रहा कि अब न किसी के ऊपर गिर पड़ूँ। मैं सबसे डरने लगा था—उस कृष्णमोहन से भी! क्योंकि, आखिर जो कुछ हो, इस हाथी पर बिठलाने का श्रेय उसी को था। मैं उसका ऋणी था। साथ ही, मेरी नजरों ने कृष्णमोहन अब वही कृष्णमोहन नहीं रह गया था। उसे मैं अब एक बड़े आदमी के रूप में देखने लगा था। इसी लिये मेरे कंधे जब हिल कर उसके कंधों से छू जाते तो मैं चौंक कर उतना ही अपने आप में सिमट आता जितना कि उसके ससुर की पीठ से पीठ लग जाने पर।

मैं सबसे डरने लगा था। सारी चीज से डरने लगा था। ऐसे जैसे कोई मुँह बाये काट खाने को दौड़ रहा हो। मैंने जी-जान से चाहा, कोई बहाना बना कर उतर जाऊँ। कितने ही बहाने गढ़े। परन्तु कभी इतनी हिम्मत न हुई कि उस बूढ़े से कुछ भी कह सकूँ। इच्छा होती थी कूद कर उस

पैदल चलने वाली भीड़ में मिल कर गायब हो जाऊँ; या किसी पेड़ के नीचे से गुजरते हुए चुपके से कोई डाल पकड़ कर लटक जाऊँ, परन्तु वह बूढ़ा मेरी आत्मा पर उस बादल जैसे छा गया था जो आसमान के हर एक तारे को ढँक लेता है। रास्ते भर मुझे किसी से कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी। कृष्णमोहन ने भी फिर किसी युवती को देख कर इशारा नहीं किया। और वह रंगीन दुनियाँ जिसे मैंने हाथी पर पहले पहल चढ़ कर देखा था, एक काली रेखा के सिवा फिर कभी कुछ नहीं दिखलाई दी। पाँच घंटे बाद जब मेले में पहुँच कर उतरा तो ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी पिंजड़े में पाँच साल बन्द रहने के बाद अचानक छूट गया हूँ। मैं जल्द-से-जल्द भाग कर अपने साथियों से जा मिला था।

मुझे आज भी याद है, उफ़ वह हाथी का कंधा!

इसी लिए जब भी कहीं कोई इस कंधे की बात करता है, मैं एक असमंजस में पड़ जाता हूँ। मैं सोचने लगता हूँ—जमीन के कीचड़ और शीत से बच कर इन सफेद कपड़ों में उनकी आत्मा कहीं वैसे ही तो नहीं सिमट जाती जैसे मेरी उस हाथी के कंधे पर? और मुझे इनके चमकते हुए बूटों और रेशमी टाइयों से कोई ईर्ष्या नहीं होती।

पिता

लड़के में यदि स्वयं लगन नहीं होती, तो यह कोई नहीं कह सकता कि वह कहाँ तक पढ़ पाता। हाई स्कूल ही उसने बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेल कर पास किया था। कुछ साल तक वह सुबह-शाम दोनों वक्त, अपने तीन-चार साथियों का खाना बनाया करता था, जो बदले में उसके हिस्से की लकड़ी, नमक, तेल आदि छोटी-छोटी चीजों की कीमतें माफ कर दिया करते थे और उसे साझे में केवल चावल और दाल देना पड़ता था। एक साल जब पिता ने घर के खर्चे से तंग आकर उसके महीने का यह चावल-दाल देना भी बंद कर देना चाहा, तो वह बड़ी मुश्किलों से उसे फिर राजी कर सका था।

उसने रिश्तेदारों से जोर दे-दे कर कहलवाया था कि अगर वह अन्धा, लँगड़ा, या लूला होकर खान्दान में पैदा हुआ होता तो कुटुम्ब की पैतृक सम्पत्ति से कम से कम उसका पेट तो पालना ही पड़ता; उसे भी एक ऐसा ही अपाहिज समझ कर यदि घर वाले उसके सिर्फ खाने-खाने का प्रवन्ध कर देते, तो वह मजे में पढ़ जाता।

परन्तु रसोइयाँ बनाने का यह काम एक तो बड़ा कठिन था दूसरे इसकी वजह से वह अपने साथियों में बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। घर पर महराज कह कर पुकारने वाले साथी उसे स्कूल में भी इसी नाम से पुकारते थे। इस लिये मौका मिलते ही उसने ट्यूशनों पर अपना काम चलाना शुरू कर दिया। यह काम भी कोई कम कठिन न था। शुरू में तो यह खाना पकाने से भी कहीं ज्यादे कठिन जान पड़ा, क्योंकि उमर थोड़ी और कोई खास परीक्षा न पास होने के कारण उसे ऐसे ही घरों में ट्यूशन मिलते थे जो एक तो गरीब होते थे, दूसरे उनके बच्चे महा कुन्द बुद्धि के होते थे, जिससे उसे परिश्रम तो बहुत अधिक करना पड़ता था, परन्तु तनख्वाह इतनी थोड़ी होती थी कि एक की जगह उसे तीन-तीन करने की जरूरत पड़ती। फिर भी वह खुश था, क्योंकि स्कूल में अब कोई उसे भण्डारी या महराज कह कर नहीं पुकारता।

हाई स्कूल के बाद उसकी दशा में किञ्चित सुधार हुआ। एक तो उसे कालेज में एक छोटी-सी छात्र-वृत्ति मिल गई, दूसरे सनदयाफ्ता होने के कारण उसको अब ट्यूशन भी कुछ अच्छे मिलने लगे। इस लिये उसने अब घर से महीने का वह चावल-दाल मँगाना बन्द कर दिया। इसके बाद अगले छः साल की पढ़ाई में उसे तरह-तरह के दिन देखने पड़े; परन्तु उसे फिर घर से चावल-दाल मँगाने की हिम्मत न पड़ी।

एक दिन जब वह अभी कालेज के प्रारंभिक सालों ही में था, उसकी मुलाकात एक जज से हुई। वह पीले रंग का एक निहायत दुबला-पतला युवक था, किन्तु उसकी काली-काली आँखों से प्रतिभा टपकती थी, यद्यपि रोटियों के लिये अन-बरत कठोर परिश्रम करते रहने के कारण उसे परीक्षाओं में इसका पूरा फल कभी नहीं मिला था। जज ने उसे अपने यहाँ रख कर उसकी पढ़ाई का सारा खर्च अपने ऊपर ले लेने की इच्छा प्रकट की। परन्तु उसने अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता को थोड़े से आराम के लिये बेच देना पसंद नहीं किया। उसने जज को टाल दिया। जाड़ों की कड़ी सर्दी और बरसात की अन्ध वृष्टि में रात को देर गये जब वह ट्यूशनों पर से ठिठुरता हुआ लौटता, तब भी उसे गर्व होता कि वह किसी का ऋणी नहीं है।

अब जब वह छुट्टियों में घर आता, तो माता अपने और लड़कों से बरा कर उसे दूध और रोटी खाने को देती। पिता उसका सम्मान करता। वह उसके साथ बाहर जाने में गौरव महसूस करता। और अपने दिहात के बड़े आदमियों से उसका परिचय कराते हुए उसकी आँखें गर्व से चमक उठती थीं। वह अपने दूसरे लड़कों को गालियाँ देते हुए उसका उदाहरण रखता। उन्हें जोर-जोर से धिक्कार कर कहता कि एक वह है जो एक पैसा घर से लिये बगैर बी० ए० तक पढ़ गया और एक तुम लोग हो कि पीछे-पीछे डंडा लेकर चलने पर भी भैंस की तरह रास्ता तक चलना नहीं आता। सुबह को तड़के, खेत पर मजदूरों की देख-रेख करने के लिये जब और लड़के डाँट-डाँट और गालियाँ सुना-सुना कर उठाये जाते थे, तो उसकी नींद में खलल डालना कोई उचित नहीं समझता। जब वह छुट्टियों से वापस शहर को लौटने लगता, तो पिता उसके साथ खाने की कुछ बढ़िया चीजें बँधवा देता। प्रयोजनों के अवसर पर उसके लिये वह मलमल के कुर्ते और कभी-कभी अच्छे जीन का कोट भी बनवा देता।

उस कुटुम्ब के सब लोग उसे एक बहुत भाग्यशाली लड़का समझते थे। उसके साफ कपड़ों से कुछ लोग हसद भी करते थे। उनका खयाल था कि वह बहुत पैसा कमाता है और बड़े आराम से रहता है। किन्तु एक बार उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ

जब उन्हों ने उसका एक बहुत मामूली रकम के लिये पिता के नाम एक तार पाया।

उन दिनों वह एक बड़ी बुरी परिस्थिति में फँस गया था। वह एक दूर के शहर में अभी नया-नया आया हुआ था। और कोई उपयुक्त जगह न मिल सकने के कारण वह अभी बढ़इयों की एक टोली के साथ एक बहुत गन्दी जगह में रह रहा था। उनके साथ वह लकड़ियों की लुब्दियाँ इकट्ठा करता, वर्तन साफ करता और फिर खाना पकाने में मदद करता। परन्तु कभी-कभी ट्यूशनों की तलाश में उसे देर हो जाती और शाम को ठीक समय पर पहुँच न पाता। उस रोज उसके चौके के साथी उससे बहुत चिढ़ जाते और उसकी बाबूगिरी का बहुत भद्दा मजाक उड़ाते। एक रोज ऐसे ही कुछ देर हो जाने के कारण एक साथी से उसकी बड़ी बकझक हो गई। दूसरे रोज उसकी एक धोती गायब हो गई। जब उसने इसकी छान-बीन करनी चाही तो बढ़इयों की सारी मण्डली एक हो गई। उसका वह साथी भी जिसके जरिये उसे वहाँ आश्रय मिला था, उसके खिलाफ हो गया। मजबूरन उसे यह जगह भी छोड़नी पड़ी। परन्तु यहाँ से हटने की पूर्व रात को उसका पूरा ट्रंक ही गायब हो गया। उसे फिर कुछ कहने की हिम्मत न हुई और अगले पाँच रोज तक लगातार उपवास करने के सिवा और कोई चारा न रहा।

यद्यपि उसने यह रकम सिर्फ मनीआर्डर के जरिये भेजने को लिखा था, परन्तु पिता ने उसे तार द्वारा भेजा। उसे इस बात की इतनी खुशी हुई कि अगले महीने भर जो-जो रिश्तेदार और मेल-जोल वाले लोग उसे मिले, उन सबसे उसने लड़के के इस तार का जिक्र किसी-न-किसी रूप में जरूर किया। वह अक्सर अपने परिचितों और रिश्तेदारों में अपने खान्दान या अपनी डींग हाँकते हुए, इस बात का जिक्र जरूर करता कि उसके कौन-कौन से लड़के, भाई और भतीजे कहाँ-कहाँ पढ़ रहे हैं और उन सबका खर्च किस प्रकार वह अकेले सँभाले हुए है। इस रुपये को भेज कर उसेयह आन्तरिक संतोष भी हुआ कि सचमुच उसकी समय-समय पर सहायता पाये बगैर उसका यह लड़का भी इतना आगे नहीं बढ़ सका होता।

परन्तु लड़के की शादी के कुछ ही महीनों बाद कुछ ऐसी घटनायें घटीं जिनका उनके सम्बन्धों पर बहुत गहरा असर पड़ा।

उसकी पत्नी एक बहुत धनी और कुलीन खान्दान की लड़की थी। उसके पिता ने सिर्फ लड़के की ऊँची पढ़ाई के कारण उसकी शादी इस खान्दान में कर दी थी। कुछ रोज तक उसका इस घर में इतना सम्मान होता रहा कि ससुर खुद उसके नाश्ता-पानी और स्नान के समय की ताकीद कर

जाता था। जब उससे आकर कोई कहता कि वह इतनी नाजुक है कि यदि ग्लास न हो तो लोटा उठा कर वह पानी भी नहीं पी सकती, या यह कि जब उसे कोठे वाले कमरे में जाने के लिये सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं, तो वह थके हुए कुत्ते की तरह हाँफती है, तो ससुर की आँखें गर्व से ऊँची उठ जाती थीं। उसे यह अभिमान था कि इतने बड़े घराने से बहू लाकर उसने अपने खान्दान का नाम ऊँचा कर दिया था।

किन्तु इसी कारण, बहुएँ उससे प्राय: सभी द्वेष करने लग गईं। अब जब सास उसके लिये दही के ऊपर का साढ़ी वाला हिस्सा रख कर उनके खाने पर तरछी दही चलवाती, तो वह मुँह ही से सिर्फ कुछ नहीं बोलतीं; अन्यथा उनका रोष हर तरह से साफ प्रकट हो जाता था। वह जब एकान्त में मिलतीं तो नई बहू की प्राय: उन्हीं विशेषताओं का मजाक उड़ातीं जिनके ऊपर उसके ससुर को नाज होता था। वह जब अपने कोठे वाले कमरे की खिड़की पर खड़ी होती, तो नीचे से देखने वाली बहुएँ एक-दूसरी की तरफ देख-देख 'कोठे वाली रानी' कह कर इशारा करतीं।

एक रोज रात को अपना ग्लास ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह कुछ अधिक झल्ला गई। उसके मुँह से निकल गया—हमारा सामान जो ही होता है वही इधर-उधर कर देता है और

पूछने पर कोई बतलाता तक नहीं ! यह हमको बिल्कुल पसंद नहीं। दूसरे का सामान बगैर पूछे न जाने लोग छूते ही क्यों हैं ? जब यह बात उस बहू को मालूम हुई जो अन-जान में वही ग्लास लिये हुए खाना खाने बैठी हुई थी, तो वह गुस्से से एकदम बौखला उठी। उसने ग्लास का पानी उँड़ेल दिया और खाने की थाली को झम से पटक कर (चौके) से उठ गई। इसके बाद उसकी बहुत मनुहार की गई, परन्तु उस रोज उसने फिर खाना नहीं खाया। यह बात सास को भी बहुत बुरी लगी। वह पहले से भी इस कड़ी मिजाज की बहू से डरती थी। और उसके खाना न खाने से तो सारे घर ही में उसके प्रति हमदर्दी की एक बाढ़ जैसे फैल उठी।

इसके कुछ ही रोज बाद, एक दिन उसका सोने का हार गायब हो गया। सारे घर में खलबली मच गई। सभी बहुओं ने अपने-अपने बक्स खोल कर एक-दूसरे को दिखा दिया। पर अन्त में वह हार उसी के गद्दे के नीचे दबा हुआ मिला। इस पर ससुर तो इतना बिगड़ा कि वह घर के आँगन में खड़ा होकर लगभग आधे घण्टे तक बहू की लापरवाही पर बकबक करता रहा। उसके चले जाने के बाद, जब वह सिसक-सिसक कर रो रही थी, तो बहुओं में केवल एक ऐसी थी जिसने चुपके से उसके पास आकर बतलाया कि उसका हार सचमुच किसी लड़की ने किस तरह वहाँ से हटा कर

दूसरी जगह छिपा दिया था, परन्तु बाद में उसकी माँ धीरे से उसके गद्दे के नीचे लाकर रख गई थी। परन्तु इस बात की बहू ने फिर कहीं कोई चरचा नहीं चलाई।

इसके बाद अब जब वह कोठे से नीचे उतरती होती, तो दूसरी बहुएँ आहट पाकर उसे सुनाने के लिये आपस में अक्सर जोर-जोर से कहतीं—भाई, हमारे बाप तो गरीब आदमी हैं, हमारे नसीब में कोठा कहाँ से बदा होता; नहीं तो हम भी जब सीढ़ियों पर चढ़तीं तो चारो ओर 'छम-छम' हो जाता। या यह कि तुम्हारा पति कलट्टर नहीं हुआ तो क्या हुआ ? वह किसी का गुलाम तो नहीं है न ? रेशमी साड़ी यदि नहीं मिलती है तो क्या परवा, किसी चाकर की बीबी तो नहीं हो न ? जमीदार चाहे थोड़ा खाय चाहे अधिक उसकी शान रहेगी जमीदार ही की और नौकरिहा नौकर ही रहेंगे।

जिस समय लड़के की शादी हुई थी, उस समय अभी उसकी साल भर की पढ़ाई बाकी ही रह गई थी। उसने अपनी शादी के संबंध में इसी बात को लेकर एतराज किया था, परन्तु पिता ने बड़े गर्व से अपना सीना ऊँचा कर के कहा था—जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक तुम्हें बहू की परवरिश से क्या मतलब ? तुम्हारी इच्छा हो तो एक क्या अभी पाँच साल तक पढ़ सकते हो ! मुझे इसकी कोई परवा नहीं।—

संयुक्त परिवार की प्रथा के अनुसार पिता ने सचमुच कोई भूल भी नहीं की। उसके घर में कोई भी ऐसा लड़का नहीं था जिसकी शादी पन्द्रह साल तक पहुँचते-पहुँचते नहीं हो गई थी। सिर्फ इसी लड़के की शादी तेईस साल तक रुकी रही।

उसने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली थी। छः महीने से अब वह नौकरी भी कर रहा था। किन्तु अब जब वह घर पर आता तो उसे वह सम्मान नहीं मिलता, जो पहले मिला करता था। वह पिता को अपने खर्च से बची हुई तनख्वाह की पाई-पाई इस तरह चुका देता था, जैसे किसी होटल का बिल चुका रहा हो। फिर भी पिता को अपना हिसाब समझाते हुए उसे भय-जैसा मालूम होता था। वह पहले की तरह अब निर्भीकता से उसका उत्तर भी नहीं दे सकता।

एक दिन जब वह बड़े दिन की छुट्टियों में घर आया हुआ था, उसकी पत्नी की तबीअत कुछ खराब थी। पिछली रात को उसे रात भर बुखार चढ़ा हुआ था। सुबह को यद्यपि ताप उतर गया था, पर सर और बदन में अब भी बेहद दर्द था। उन दिनों घर में रसोई बनाने की उसी की बारी चल रही थी; परन्तु उस रोज उसने उसे खाना बनाने से मना कर दिया।

उसी दिन दोपहर को एक लड़के की बात लेकर उसके बड़े भाई से उसकी कुछ बकझक हो गई। भाई ने अन्त में

सिर्फ इसी लिये थी न, कि वह अपनी बीबी को इस घर में रक्खे हुए है ?

उसने सबसे पहले इस निश्चय को अपनी माँ से कहा। माँ ने सब कुछ सुन लेने के बाद मुँह फुला कर कहा—तो मैं क्या जानूँ ? अपने बाप से पूछो। मैं किसी के मामले में दखल नहीं देना चाहती !

शाम तक उसके पिता से कहने के पहले ही यह चरचा गाँव में जोरों से फैल गई। औरतें जब आपस में इकट्ठी होतीं तो वह हाय मार कर कहतीं—आज कल का जमाना तो देखो, माँ-बाप ने पाल-पोस कर, पढ़ा-लिखा कर इतना बड़ा किया लेकिन अब जब कमाने लायक हुए तो बीबी को लेकर चलता बने। माँ-बाप चूल्हे-भाड़ में जाँय, उनको कौन पूछता है ? यदि ऐसे ही सब लड़के करने लग जाँय तो बेचारे बूढ़े-बुढ़िया को एक लोटा पानी भी नसीब न हो। या—लड़का खूब ठीक कर रहा है। बेईमानी और अन्याय का नतीजा ऐसे ही मिलना चाहिये। सब लड़कों को तो खेती-बारी में लगाये रक्खा और उनको विलायत पढ़ने भेज दिया। शादी भी रजवाड़े के घर की, खूब सब मजा चखा रहे हैं !—ऐंठ-ऐंठ कर वह तानें मारतीं।

रात को खाना खा चकने के बाद जब यह प्रश्न अन्त में पिता के सामने रक्खा गया तो उसने लड़के से कहा—ठीक

है, अगर तुम खान्दान की इज्जत-बड़ाई का खुद खयाल नहीं कर सकते तो मैं क्या करूँ ? तुम पत्नी को साथ लेकर बाहर रह सकते हो, परन्तु उस हालत में तुम्हें चालीस रुपया, महीने की हर पहली तारीख को, घर अवश्य भेज देना पड़ेगा। मुझे कोई एतराज न होगा।

लड़के ने बहुत आश्चर्य के साथ पिता के इन शब्दों को सुना। परन्तु उसने अपने आप को सँभाला और बड़े धैर्य के साथ कहा—मगर मेरी तनख्वाह अभी तो सिर्फ पचास रुपया है, मैं आप को चालीस रुपया कैसे भेज सकता हूँ ? दस रुपया तो सिर्फ मकान का किराया चाहिये !

मैं यह सब कुछ भी नहीं सुनना चाहता ! मैं तुम्हें पत्नी को साथ रखने की इजाजत देता हूँ, यही बहुत बड़ी बात है !'—पिता ने कहा।

मगर लाचारी है, ... चालीस रुपये !'—कहते हुए उसके भीतर की तमाम नफरत और आश्चर्य उसके होठों पर काँप उठे।

पिता ने आवेश में आकर कहा—यदि लाचारी है तो तुम तब तक बहू को बाहर नहीं ले जा सकते जब तक तुम मेरे उन तमाम खर्चों का भुगतान न कर दो, जो मैंने तुम्हारे ऊपर किया है।

लड़का क्रोध, आश्चर्य और घृणा से एक साथही भर गया। उसका चेहरा तमतमा उठा। उसने एक तीव्र आवेश में भर

कर कहा—खैर, कल तक आप मुझे उन तमाम खर्चों का हिसाब समझा दीजियेगा, मैं पाई-पाई का चुका दूँगा।

दूसरे दिन लड़के को पिता का पाँच हजार का एक लम्बा बिल प्राप्त हुआ। लड़के ने पहले मीजान की रकम पढ़ी, फिर बड़ी उत्सुकता और महान् आश्चर्य के साथ बिल के प्रत्येक ब्यौरे को पढ़ा। इस रकम में समय-समय पर उसकी पढ़ाई की इमदाद रूप में दिये गये कपड़े और चावल आदि की कीमतों के अतिरिक्त उसके बारह साल की उम्र तक का, पालन-पोषण का भी खर्च शामिल था। साथ ही वह तमाम खर्चे भी शामिल थे जो पिता ने उसके जन्मोपलक्ष, मुंडन और जनेऊ आदि में किये थे। उसके विवाह में जो दहेज मिला था उसका भी ब्यौरेवार खर्च लिख कर समझा दिया गया था।

लड़का यह बिल पढ़ कर स्तब्ध रह गया। 'पाँच हजार!'—उसने आश्चर्य से अपने होठों को काट लिया। इतनी बड़ी रकम उसने अभी तक हाथों में उठा कर देखी भी नहीं थी!

परन्तु उसकी पत्नी को जरा भी ताज्जुब न हुआ। उसने अपने धनी पिता के दिये हुए तमाम जेवरों और पहनने के लिये दो मामूली धोतियों को छोड़ कर, बाकी अपनी तमाम साड़ियों को पति के हवाले कर दिया। और उससे, इन्हें बेच कर जल्द से जल्द, इस रकम को अदा कर देने की प्रार्थना की।

इसके चौथे रोज लड़के ने पिता को साढ़े चार हजार के नकद नोट गिन दिये। बाकी रुपये के लिये उसने चार-पाँच दिन की देर बतलाई।

पिता ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने सिर्फ नोटों को सँभाल कर रख लिया।

जब आठवें दिन शेष रुपये भी मिल गये तो उसने अपने एक लड़के को बुला कर बहू को स्टेशन पहुँचा आने का आदेश दिया। साथ में रास्ते के लिये खाने-पीने का सामान भी रखवा देने की ताकीद की।

उस रोज शाम को जब गाँव की औरतें आपस में मिलीं तो उन्हों ने कहा—बूढ़े ने अपना खर्चा-खर्चा लेकर छोड़ दिया। नहीं तो सूद लगाया होता तब बच्चू को मालूम होता कि माँ-बाप लड़के पर क्या खर्च करते हैं!—इन औरतों में कोई भी ऐसी नहीं थी, जिसे बीस से अधिक की गिनती आती रही हो। यदि कभी बीस से ऊपर की आवश्यकता पड़ी भी तो इनका काम 'एक बीस, दो बीस' कर के चलता था। पाँच सौ और पाँच हजार में कौन बड़ा है, यह किसी को भी नहीं मालूम था।

पाँच साल के बाद जब लड़का फिर, किसी शादी में, अपने घर आया तो उसे मिट्टी और खपरैल के पुराने कच्चे मकान के स्थान पर एक पक्की दो मंजिली कोठी खड़ी मिली।

उसके कोठे वाले कमरे की वह अकेली छोटी-सी खिड़की जिसके साथ उसके बचपन से लेकर जवानी तक की अनेक स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं अब हमेशा के लिये शून्य में मिल चुकी थी। माँ ने उसके बीते हुए बचपन की याद में उसे फिर और लड़कों से बरा कर दूध और रोटी खाने को दी। किन्तु जब वह खाना खा रहा था तो एकबारगी दूसरी मंजिल पर कितने ही पैरों की एक साथ की धमधमाहट और बिछुओं की आवाज ने कुछ लोगों की किस्मतों की याद दिलाई जिनके बाप या तो फूस, या कच्चे खपरैल के मकानों में रहते थे, परन्तु उनकी लड़कियाँ अब कोठों पर छम-छम करती हुई विहार करती थीं।

—:o:—

घृणा

मोटर, बस, ट्रक ट्राम, सभी कुछ उस मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते धीमी हो जाती हैं। अत्यन्त धीमी हो जाती हैं—क्षण भर के लिये ठहर भी जाती हैं। सामने की ट्राम निकल जाती है। फिर मोटरों की एक लम्बी लाइन में रुक-रुक कर, पैदल और घोड़ागाड़ी वालों से बच-बच कर एक बहुत बड़े गोलम्बर के चारो तरफ, अपने आप जैसे, चक्कर काटने लगती हैं। सुबह से लेकर कुछ देर रात तक, इस छराहे की कोई ऐसी सड़क नहीं है जिसे आप बिना दौड़े हुए, बिना रुके हुए अपनी साधारण चाल से पार कर लें।

परन्तु यह सड़क, जो सीधे पूरब की ओर जाती है, दिन में दो बार समुद्र में ज्वार की तरह यकायक फूल-फूल और उतर-उतर जाती है—यह आफिसों के खुलने या बन्द होने का समय होता है। यदि आप एक जगह खड़े होकर दूर तक देखें तो ऐसा मालूम होगा कि कोई बहुत बड़ा जुलूस आ रहा है—सवारियाँ बीच में सड़क पर और पैदल चलने वाले दोनों ओर के फुटपाथों पर—एक अत्यन्त सुसंगठित जुलूस।

शाम को यह जुलूस उस मोड़ तक तो साथ-साथ आता है, परन्तु इसके बाद ही छिन्न-भिन्न हो जाता है। केवल उत्तर वाली पटरी की अपार भीड़ कुछ दूर तक और अपनी (अक्षुण्णता) बनाये रखती है। परन्तु जब यह सीधे दाहिने हाथ की पटरी पर घूम कर आती है तो इसे भी यकायक एक जगह आकर रुक जाना पड़ता है। सामने सड़क के बीच में एक पीली पगड़ी वाला सिपाही खड़ा रहता है, जो थोड़ी-थोड़ी देर पर, मोटरों की भीड़ ख़तम करके इन्हें हाथ देता है। वह जब तक हाथ नहीं देता तब तक इन्हें यों ही, सड़क के इस पार ही, खड़ा रहना पड़ता है। इतनी ही-सी देर में, लाल-पीली-काली, पचासों मोटरें एक ओर से दूसरी ओर को हो जाती हैं। इनकी भी भीड़ में पीछे दूर तक एक फुलाव आ जाता है। ये खड़े तब तक, या तो पीछे से दबाती

हुई भीड़ से अपने आपको बचाने की कोशिश करते हैं, या फिर सामने मोटर के लगातार ताँतों के ऊपर अपने प्राण और चक्षुओं, दोनों ही को बिछा देते हैं।

हाँ, हफ्ते के किसी-किसी रोज, इसी समय, उन्हें सड़क के उस पार से एक निरन्तर शोर सुनाई पड़ता है—पीपुल्स एज़ चार आना! पीपुल्स एज़ चार आना!! जनयुग चार आना! चार आना जनयुग!! और ज्योंही यह जत्था सड़क पार करके उस ओर लोकल स्टेशन में दाखिल होना चाहता है, त्योंही उनकी आँख, नाक, कान, मुँह के पास एक छोटी-सी पत्रिका हिलती है और फिर वही शब्द सुनाई पड़ते हैं—पीपुल्स एज़ चार आना, चार आना पीपुल्स एज़! जनयुग चार आना, चार आना जनयुग!!

यह हैं कम्युनिस्ट कार्यकर्ता!—संख्या में आठ-दस, बारह-पन्द्रह जो इस लोकल स्टेशन के प्रत्येक फाटक को चारो तरफ से घेर कर खड़े रहते हैं, ताकि कोई ऐसा व्यक्ति बाकी न बच जाय जिसकी आँख, नाक, कान, मुँह के पास एक बार वह पत्रिका हिल न उठे! दुबले-पतले; एक मामूली-सा पतलून, एक मामूली-सी खुले-खुले बटन की कमीज पहने हुए; दाढ़ी-मूँछ या तो बिल्कुल साफ या खूब बढ़ी हुई; लम्बे-लम्बे बाल, प्रायः हवा में उड़ते हुए—यदि एक शब्द में कुल कहना चाहें तो फटेहाल का प्रदर्शन! शानदार गाड़ियों

से गुजरते हुए यदि किसी सेठ का ध्यान उस ओर चला जाता है, तो वह मन ही मन इन खन्तों पर मुस्करा कर रह जाता है। परन्तु इसी राह से कुछ लोग ऐसे भी गुजर जाते हैं जो इनकी चरण-धूलि को मन-ही-मन स्पर्श करके रह जाते हैं। लेकिन एक भारी संख्या—बहुत भारी संख्या, ऐसे ही लोगों की यहाँ पहुँचती है जिनके दिमाग में इन्हें देखते ही, केवल एक शब्द अपनी पूरी तस्वीर के साथ उतर आता है—गद्दार !

यह जो पूरब से पैदलों का एक अपार मजमा बहता हुआ आता है, उसमें भी एक भारी संख्या—बहुत भारी संख्या, ऐसे ही लोगों की है।

वह सब बाबू हैं। दफ्तरों में काम करते हैं। इनमें छोटे भी हैं। बड़े भी हैं। किन्तु सबके सब साफ-सुथरे, एक ही से कोट, कमीज, पतलून और टाइयाँ बाँधते हैं। किन्तु जब ये घर पहुँचेंगे, तो सबके सब अपने इन पोशाकों को उतार कर खूँटी पर टाँग देंगे। बदले में एक गंदी-सी लुंगी या एक निहायत गन्दा-सा पाजामा पहन लेंगे। शेष शरीर से नंगे ही रहेंगे। इनके बच्चे भी एक काफी उमर तक घरों में नंगे ही घूमते रहते हैं। यदि वे कभी किसी चने वाले या खिलाड़े वाले को देख कर मचल पड़ते हैं, तो इनकी पत्नियाँ सिर्फ एक चाँटे में ही सब काम पटा लेती

हैं। फिर भी वह सब बाबू हैं। वह सब कम्यूनिस्टों से घृणा करते हैं!—यद्यपि किसी बड़े महल के नीचे से गुजरते हुए, कभी-कभी जितना वह सोच जाते हैं उतना कोई समझ-दार कम्यूनिस्ट भी नहीं सोच सकेगा।

इन्हीं के जैसा, या इन्हीं में से एक बाबू था हरेन्द्र बाजीराव खेर।

वह बड़ी-सी सभा जो उस साल बड़े-बड़े नेताओं की हुई थी, उसमें वह भी मौजूद था। कोई बहुत बड़ा नेता बोल रहा था—उसकी प्रत्येक ऊँची आवाज पर पूरा पण्डाल थपोड़ियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठता था। बोलते-बोलते जब उसने एक बार कहा—आज मैं देश में चारो तरफ एक अजीब लहर, एक अजीब आग,—एक अजीब बिजली की-सी लपक (ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे जैसे एकाएक अपना शब्द मिल गया) देख रहा हूँ, तो जनता ने खड़ी हो-हो कर थपोड़ियाँ बजाईं। हरेन्द्र बाजीराव खेर भी खड़ा हो गया था।—उस आग को कम-से-कम उस समय तो उसने बुरी तरह महसूस किया; किन्तु इसके बाद ही एक दूसरा नेता बोलने लगा था। और जब उसने बोलते-बोलते एक बार कहा—'यह हमारा जो आप लम्बा-चौड़ा ढाँचा देखते हैं, वह भीतर से बिल्कुल खोखला हो चुका है, तो हरेन्द्र ने एक बार अपने भीतर के उस खोखलेपन को भी महसूस कर लिया। वह फिर थपोड़ियाँ

पीटने लगा था—उसके आस-पास के सभी लोग थपोड़ियाँ पीटने लगे थे। परन्तु यह क्या? मंच पर बैठे हुए लोगों में किसी ने भी थपोड़ी नहीं पीटी? मंच के आस-पास के लोगों ने भी नहीं? सिर्फ पीछे ही पीछे के लोग! इसके कुछ ही क्षण बाद मंच के आस-पास बैठे हुए लोगों में किसी ने उसको हूट किया। सभापति ने भी उसको एक बार रोक कर कोई चेतावनी दी। मगर क्या? मालूम नहीं! वह फिर बोलने लगा था। लेकिन उसको फिर किसी ने हूट किया—'बैठ जाओ।' और थोड़ी ही देर में चारो तरफ से हूट होने लगा—बैठ जाओ, गद्दार है! गद्दार है!!

हरेन्द्र बाजीराव को बाद में मालूम हुआ था—चार साल के बाद, कि कम्यूनिस्टों ने मुल्क के साथ कितनी बड़ी गद्दारी की थी!

लेकिन अब वह उनसे घृणा करता था। जब किसी के हाथ में पीपुल्स एज्ञ या जन युग की कोई प्रति देखता तो घृणा से उसकी नाक सिकुड़ जाती। उनकी बदबू सीधे जैसे उसके मस्तिष्क को छू जाती थी!

परन्तु उस मोड़ से होकर उसका कोई रास्ता नहीं। वह रोज ट्राम से आता और ट्राम ही से, उधर-ही-उधर वापस चला जाता। ऐसे ही जब कोई खास काम आ पड़ता, तभी

इस ओर से होकर कभी चला जाता तो चला जाता। परन्तु बहुत कम।

उस रोज भी शायद, ऐसा ही कोई खास काम आ पड़ा था।

उसने दूर ही से—सड़क के उस पार ही से, कम्यूनिस्टों की इस हरकत को देखा। मन में कहा—इन गद्दारों की यह ज्यादती! सर पर चढ़े जाते हैं! उफ़ कैसे ये लोग बरदाश्त कर लेते हैं? मैं होता,.....मेरे ऊपर इस तरह चढ़ आयें तो ऐसा चाँटा खींच कर दूँ कि सीधे जमीन पकड़ लें! गद्दार! और उसके एक हाथ की उँगलियाँ सचमुच चाँटे की शकल में तन गईं। वह लम्बा-चौड़ा, विशालकाय था।

परन्तु उसे स्टेशन में नहीं जाना था। किसी दूकान पर जा रहा था।

इसी स्टेशन पर शायद उसने पहले भी कभी उन्हें देखा हो; परन्तु अब याद नहीं कि तब वे अपना अखबार पैरों पर गिर कर बेचते थे या इसी तरह सर पर चढ़ कर!

दूसरे दिन आफिस में उसके एक साथी ने आकर कहा—"यार, एक खबर तुमको मालूम हुई कि नहीं?"

"कौन-सी ख़बर?"

"कम्यूनिस्टों का आफिस सभों ने जला डाला!"

"सच?"

"हाँ-हाँ, आज का अखबार तुमने नहीं पढ़ा?" परन्तु

फिर भी, जब उसको विश्वास नहीं हुआ (क्योंकि कम्यूनिस्टों के ख़िलाफ़ ऐसी बहुतेरी बेतुकी ख़बरें सुनने में आतीं और बाद में ग़लत साबित होतीं!) तो उसने एक बहुत प्रसिद्ध अख़बार का एक पन्ना खोल कर उसके सामने पटक दिया। एक कोने में बहुत पतले अक्षरों में पाँच–सात लाइनों की वह ख़बर छपी थी।

हरेन्द्र बाजीराव खेर उसके प्रत्येक अक्षर को जैसे पी गया। पढ़ कर हतोत्साह हुआ कि क्रोधित जनता ने कुछ विशेष मार-पीट नहीं की। सिर्फ दो–चार आदमियों को मामूली-मामूली चोटें आई थीं। फिर भी जो कुछ किया था, काफी खुशी की बात थी। कमसे कम 'जनयुग' और 'पीपुल्स एज' चार-छः महीने तो किसी भी हालत में नहीं निकल सकने वाले थे। उनका प्रेस भी जला डाला गया था।

किन्तु इसके दस-एक रोज़ बाद ही जब वह फिर एक रोज़ उस स्टेशन की ओर गया तो उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। वह गद्दार फिर अपनी पत्रिकाएँ वैसे ही बेच रहे थे।

उस रोज उसे स्टेशन में भी जाना था। किन्तु वह अपने आश्चर्य में इस तरह डूबा रहा कि उसे अपने चाँटे वाली बात तब तक याद नहीं पड़ी जब तक कि एक कम्यूनिस्ट ने

एक पतली-सी पत्रिका को हिलाकर सचमुच उसकी नाक पर एक हल्की-सी चोट नहीं कर दी।

उसने घूमकर पीछे की ओर देखा—एक चुहिया-सा युवक। मन में आया ऐसा खींच कर थप्पड़ दे कि सीधे ज़मीन पकड़ ले। परन्तु वह डरा—वे संख्या में आठ-दस, बारह-पन्द्रह थे। सिर्फ आँखें तरेरता हुआ निकल गया यद्यपि अखबार बेचने वाला युवक उसकी आँखों का तरेरना भी न देख सका।

दूसरे दिन आफिस में फिर कम्यूनिस्टों की बात चली तो उसने अपने एक साथी से पूछा—'अखबारों में तो निकला था कि इनका प्रेस भी जला डाला गया था, फिर ये कैसे अपना पेपर निकालते हैं?'

साथी ने घृणा के साथ मुस्करा कर कहा—'अरे भाई, इन हरामखोरों को पैसे की कमी है? देखते नहीं हो आठ-आठ, नौ-नौ सौ पन्नों की इतनी मोटी-मोटी किताबें केवल दो-दो, डेढ़-डेढ़ रुपये में बेचते हैं। इनके बाप जो रूसवाले देते हैं!'

उसी रोज शाम को उसने कम्यूनिस्टों का एक जुलूस देखा—उनके नारों, उनकी तस्वीरों, उनके झण्डों सबमें उसे एक रूस की बू आयी। वह नफरत से अपने नथुने सिकोड़ता हुआ चला गया। उसकी समझ में नहीं आया कि किसी देश के लोग ऐसे भी हरामखोर हो सकते हैं। रास्ते भर

उसके मस्तिष्क में केवल एक ही शब्द गूँजता रहा—गद्दार! गद्दार!!

एक रोज ट्रेन से कहीं जाना था। ट्रेन लोकल ही थी, मगर स्टेशन दूसरा था। यहाँ कोई कम्यूनिस्ट अपना अख़बार नहीं बेचता था।

बड़ी जल्दी थी। ट्रेन प्लैटफार्म पर आकर खड़ी थी। टिकट कटा कर ज्यों ही वह प्लैटफार्म के अन्दर दाखिल हुआ, एक निहायत दुबला-पतला लड़का चोंगे-सी एक कमीज़ पहने हुए उसके सामने एक पत्रिका हिलाता हुआ खड़ा हो गया—बाबू जी 'जानजूग' 'पीपुलेज'।

हरेन्द्र बाजीराव खेर ने न तो उसकी बोली समझी और न उसे समझने की कोई जरूरत ही थी। उसको जल्दी थी। वह फिर अपना पैर तेजी से बढ़ाने लगा। परन्तु वह लड़का भी अपनी पत्रिका को ऊँचे उसकी नाक की ओर उठाये हुए उसके साथ-साथ तेजी से चलने लगा—'बाबू जी जानजूग, पीपुलेज!' जैसे कोई सड़क का भिखमंगा चलती हुई मोटर के साथ कुछ दूर हाथ फैला कर दौड़ता है—एक पैसा, बाबू जी एक पैसा।

हरेन्द्र ने एक बार घूमकर लड़के को डाँटना चाहा। परन्तु लड़के ने उसकी आँख के सामने एक बार फिर पत्रिका दिखा कर कहा—बाबूजी, जानजुग, सिर्फ एक ले लीजिये।

बाबूजी ने भी मोटे-मोटे अक्षरों में पढ़ा—'जनयुग'। उबल पड़े। एक बार इधर-उधर देखा, फिर खींच कर एक गम्भीर थप्पड़ दिया। परन्तु लड़का ज़मीन पर नहीं गिरा। बाबूजी का क्रोध और भी उबल पड़ा। फिर दूसरा थप्पड़ दूसरे गाल पर दिया—अबकी बार लड़का सीधे जमीन पर जा गिरा।

ट्रेन सीटी देकर चल पड़ी थी। तेजी से लपक कर वह ट्रेन में चढ़ गया। इस विजय की खुशी में देर तक उसका समूचा शरीर काँपता रहा।

दूसरे रोज 'पीपुल्स एज' और 'जनयुग' दोनों अख़बारों के पहले पन्ने पर यह ख़बर छपी—

'गुण्डे द्वारा दस बरस के लड़के पर घातक प्रहार।'

आज सुबह दादर स्टेशन पर 'जन युग' बेचते हुए एक दस बरस लड़के को किसी गुण्डे ने बुरी तरह पीटा। अभी दो-ही-चार रोज हुए, भूखों मरते हुए इस अनाथ लड़के को हमारे एक साथी ने पार्टी की तरफ से अखबार बेचने के लिये नियुक्त किया था। लड़का बेहोशी की हालत में अस्पताल लाया गया। उसकी हालत अब भी अत्यन्त नाजुक है। गुण्डा लापता है।'

परन्तु यह खबर हरेन्द्र बाजीराव खेर को कभी नहीं मालूम हो सकेगी; क्योंकि घृणा ने उनके हृदय के हरेक द्वार को बन्द कर रक्खा है।

रबर की चिड़िया

कोई-कोई बच्चे अपनी चाचियों के कमरों में ठीक उसी समय जा पड़ते हैं, जब वे अपने बच्चों को चुपके-चुपके कोई चीज खिलाती रहती हैं। वे चुपचाप दीवाल, या किवाड़ के पल्ले से पीठ टेक कर खड़े हो जाते हैं। कुछ क्षण तक अत्यन्त कातर दृष्टि से कुत्तों की तरह, उन खाते हुए बच्चों के मुँह की ओर देखते हैं। चाचियों में से कुछ ऐसी हैं जो उस समय उनकी ललचाई हुई दृष्टि पर तरस खा कर कुछ उन्हें भी दे देती हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिनका खयाल है कि कुत्ते की जीभ का पानी न मारा जाय तो वह खाना ही नहीं हजम होता। इसी लिये उनके भी आगे कुछ अत्यन्त घृणा और

अट्ठासी]

तिरस्कार के साथ फेंक देती हैं। परन्तु उनके ये भाव भी हमेशा एक से ही नहीं होते। यदि वे खीझ या गुस्से में हुईं, तो निश्चय ही उस बच्चे को डाँट कर बाहर भगा देंगी।

यद्यपि इस प्रकार का व्यवहार उस हरएक बच्चे के साथ होता है जो उस समय लालच वश अपनी चाचियों के कमरे में चले जाते हैं; परन्तु उस बालक के साथ कुछ विशेष रूप से भी होता है। क्योंकि, उसकी विधवा माँ, बदले में, उन चाचियों के बच्चों को कुछ भी नहीं खिला सकती है। परन्तु बालक अपेक्षा-कृत चतुर है। दिल तो उसका प्रायः मसोस उठता है, परन्तु अपनी चाचियों के कमरे में बहुत कम जाता है।

× × × ×

वह लकड़ी के सुन्दर-सुन्दर लाल-लाल घोड़े, काले-काले हाथी, टिन की लाल-लाल छोटी-छोटी मोटरें, रंग विरंग की छोटी-छोटी रेलगाड़ियाँ जो चाभी भर कर जमीन पर रखते ही खुर-खुर-खुर दौड़ने लग जाती थीं और वह सुन्दर परों के पुछल्लों वाली नरकुल और फुग्गों की अद्भुत पिपहिरियाँ बच्चों के मस्तिष्क में नशे की तरह झूम उठीं। उनमें से किसी ने भी, इस किस्म का कोई भी खिलाड़ा पहले नहीं देखा था। मिट्टी का हाथी, मिट्टी का बिगुल—यही उनके लिये एक बड़ी चीज थी। दीवाली के कोसों में छेद कर-कर,

उनमें डोरे पिन्हा-पिन्हा तराजू बना लेना और फिर उनसे धूल तौल-तौल कर आपस में रोजगार करना—यही उनका सबसे प्रिय खिलवाड़ था। जब कोई बड़ा लड़का सरपत की सुरफुल्लियों से एक बाली या तीन पहियों की एक बेतुकी गाड़ी बना कर दे देता, तो उसे वे दिन भर नाके-काने लटकाये फिरते। आज इन नये-नये खिलाड़ों को देख कर उनके आश्चर्य और खुशी का कोई ठिकाना न रहा! वह सब, दौड़-दौड़ कर, अपनी माताओं को बुलाने या अपने घरों से पैसे लाने चले गये। केवल वही एक ऐसा बालक था जो उन सभों के चले जाने के बाद भी अपने स्थान से नहीं हिला।

वह सबके चले जाने के बाद भी उन खिलाड़ों को बड़े ग़ौर से देखता रहा। सहसा उसकी निगाह बक्स में, एक कोने में पड़ी हुई कुछ रबर की चिड़ियों पर पड़ी—जिन्हें खिलाड़े वाला बच्चों को दिखलाना भूल ही गया था! बालक ने झट अपना हाथ डाल, उसमें से एक चिड़िया निकाल ली। उसकी यह धृष्टता खिलाड़े वाले के आबनूस–जैसे काले नौकर को बुरी लगी। उसने बालक को डाँट उसके हाथ से चिड़िया छीन ली। मगर उसके मालिक को बालक पर तरस आ गया। शायद, उसी समय, नये दर से प्राप्त होने वाले लाभों को सोच कर उसके हृदय में दया का भी स्रोत फूट पड़ा था। 'देखने दो, देखने दो', उसने बड़े प्यार से फिर बालक

को चिड़िया दिखलाते हुए कहा, 'देखो तो, यहाँ दबाने से कितनी सुन्दर बोलती है !' और फिर देखने के लिये चिड़िया बालक को दे दी।

बालक ने उसे अपने हाथों में ले, एक बार स्वयं भी वैसे ही दबाया-'च्यूँ, च्यूँ !' उसका हृदय खुशी से नाच उठा। उसके जी में आया—अभी अपनी धोती की मुर्रहियों में छिपा कर चल दे। और ज्योंही खिलाड़े वाला चला जाता है, वह उन तमाम बालकों के कानों में ले जाकर 'च्यूँ-च्यूँ' दबा दे, जो अभी-अभी खिलाड़े वाले को घेरे हुए थे परन्तु जिनकी निगाहें इस स्वर्गीय चीज को ढूँढ़ने में असमर्थ रहीं।

परन्तु ज्यों ही खिलाड़े वाले ने फिर कहा—और इसकी कीमत भी कुछ नहीं है, सिर्फ तीन आना ! बालक की सारी खुशी हवा हो गई। वह कुछ क्षण तक फिर, अत्यन्त कातर हृदय से उस चिड़िया को उलट-फेर कर देखता रहा—उसकी आँखें, उसकी चोंच, उसके पेट में वह बढ़िया, छोटा-सा छेद और उसका वह कोमल स्पर्श ! बालक का हृदय उत्ताल तरंगों की तरह उठ-उठ कर टूट जाता था।

अन्त में उसने चिड़िया को फिर उसी जगह रख दी जहाँ से पहले उठाया था। 'तीन आना ! बारह पैसे !' सोचता हुआ वह अत्यन्त क्षोभ से वहाँ से उठ कर पीपल की सोर पर जा बैठा। उसकी विधवा माँ के लिये यह कितनी बड़ी

रकम थी, वह बालक भी अच्छी तरह समझ सकता था। उस बड़े परिवार में उसकी निःसहाय माँ जिस अन्याय और दुर्व्यवहार का शिकार हो रही थी, उन्हें सोच कर वह स्वयं कभी-कभी बड़ा दुखी होता था। किन्तु जब कभी उसकी माँ कोई ऐसी बात कर बैठती जो अनायास उनकी आफत का एक कारण बन जाती, उस समय तो वह इतना दुखी होता कि वह सोचता—काश, वह मर भी जाती! कभी-कभी उसका यही दुख माँ के प्रति घृणा का भी रूप धर लेता। उसके चाचा उसकी इस मनोवृत्ति को उसकाते और उसकी माँ को उससे भी नक्कू बनाने का प्रयत्न करते। बालक केवल अपने चाचाओं की इस नीति को नहीं समझता अन्यथा वह माँ के प्यार और विवशताओं, दोनों ही को अच्छी तरह मझ सकता था। वह जो कभी-कभी उसे चोरी से बाजार से मिठाइयाँ मँगवा देती, चुपके से दही की साढ़ी, गुड़ और भूने खिला देती, वही बालक के लिये एक आश्चर्य जनक बात होती।

कुछ देर वह पीपल की सोर पर बैठा रहा—माँ से, उसके टूटे हुए काठ के बक्से से, अमुक चाचा से, अमुक भइया से, कहाँ से और किस तरह बारह पैसे मिल सकते हैं?

कुछ गज दूर, दाहिने हाथ खिलाड़े वाले के चारों तरफ

बच्चों का शोर फिर बढ़ने लगा—माँ मुझे यह रेलगाड़ी ले दो, यह हवाई जहाज ले दो ! ऐ खिलाड़े वाले, इसकी कीमत क्या है ? जरा इधर तो देखो !...'ऐं, पाँच आने !' मातायें आँख निकाल, भर्राई हुई आवाज में कहतीं।

बाँयें हाथ कुछ ही कदम पर, बालक का भी घर साफ-साफ दिखाई दे रहा था। परन्तु उसने अपनी माँ और उसके टूटे हुए बक्से की तलाशी कल ही ले ली थी। शेष, चाचा, चाची, भइया, भौजी, कोई भी व्यक्ति उसकी कल्पना में पूरा नहीं उतर रहा था।....'हाँ !' एक उपाय, धुँधला-सा, अभी उसके दिमाग़ में उठ ही रहा था कि सहसा उसने मीना को घर से बाहर निकलते हुए देखा। यह उसके बड़े चाचा की सबसे छोटी लड़की थी। और इतनी हठी थी कि जिस चीज के लिये रोना शुरू कर देती, उसे मँगाते ही बनता।

उसने तनिक खयाल किया। फिर तीर की तरह मीना के पास निकल गया। उसे फुसला कर खिलाड़े वाले के पास ले आया। और उस चिड़िया को दिखला कर इतनी तारीफ की कि वह सचमुच ही उसे खरीदवाने पर तुल गई।

मीना को एक चिड़िया आ गई। परन्तु इससे बालक का मतलब हल नहीं हुआ। उसका खयाल था, जब मीना को चिड़िया खरीदी जायेगी, तो शायद, उसके भी हठ करने पर उसे भी एक चिड़िया मँगा दी जाय। लेकिन ऐसा नहीं

हुआ। उसके चाचाओं में से एक ने कहा—मीना तो लड़की है, क्या तू भी लड़की है ? दूसरे ने कुछ और तेज व्यंग कसते हुए कहा—मीना को तो उसकी माँ ने खरीदा है, तू भी जा अपनी माँ से पैसा माँग ले आ !

परन्तु बालक इससे तनिक भी हतोत्साह नहीं हुआ। उसे पहले ही से लगने लगा था कि यह तीर खाली जायेगी। कुछ क्षण तक अपने उन व्यंग कसते हुए चाचाओं के सामने आँखें नीची किये, पैर के अँगूठों से जमीन कुरेदता हुआ खड़ा रहा। एक बार मन ही मन दूसरे को कुछ गाली भी दी। परन्तु उसके ख्याल को एक तेज झटका लगा—खिलाड़ावाला अभी उठ कर चल देगा !·······पट्टीवाला, मुरब्बेवाला; चूड़ीवाली, सुरतीवाला, सभी तो धान, गेहूँ, मटर किसी भी नाज के बदले अपना सौदा करते हैं ! क्या एक लिलाड़ेदाला ही अपना सौदा नाज के बदले में न करेगा ?··········क्यों नहीं, जरूर करेगा !—उसकी आत्मा कह रही थी।

वह धीरे से सबकी नजर बचा कर उस कोठरी में पहुँचा जहाँ मेहमानों के लिये कुछ घड़ों में अत्यन्त महीन किस्म के चावल रक्खे हुए थे। उसने एक घड़े में से इतना चावल निकाल कर अपनी धोती के छोर में बाँधा जितना कि वह लपेट कर आसानी से चल सकता था। लगभग डेढ़ सेर के—जिसकी कीमत एक रुपये की रही होगी। फिर दरवाजे

से झुक कर बाहर देखा-आँगन बिल्कुल सूना पड़ा हुआ था। औरतें सब भीतर काम में लगी हुई थीं। उसने कोठरी से बाहर निकल कर अत्यन्त सावधानी से उसकी जंजीर चढ़ाई और क्षण भर में पीछे के दरवाजे से घर के बाहर हो गया। पहले पिछवाड़े के कोले में, फिर चमरटोली में, फिर चमरटोली से भड़साँय के पीछे वाली गली में। किन्तु ज्यों ही वह इन तंग, गंदी और चक्करदार गलियों को पार कर फिर पीपल के नीचे आम रास्ते पर पहुँचा, उसके उन दो चाचाओं में से, जिन्हें छोड़ कर वह भीतर गया था, एक ने उसको देख लिया।

उसे बालक के आगे लटकती हुई गठरी को पहचानने में तनिक भी देर नहीं लगी। दौड़ कर पकड़ लाया। फिर उन दोनों ने उसकी गठरी खुलवाई। गठरी के अन्दर का चावल देखते ही एक ने उसे ऐसा चाँटा मारा कि वह एक-दम जमीन पर जा गिरा। गठरी का चावल धरती पर बिखर गया। और बालक का मुँह लहू-लुहान हो गया।

लहू देख कर वह किंचित सहम गया। उसने फिर हाथ नहीं उठाया वह बिखरे हुए चावल को अपने अँगोछे में उठा-उठाकर रखने लगा।

बालक धीरे से खिसक कर अपनी माँ के कमरे में चला आया। परन्तु यहाँ आकर भी उसने रोया नहीं, चिल्लाया

नहीं। उसकी आँखों में एक बूँद आँसू का नहीं चमका—मीना को पैसे उसकी माँ ने दिये। उसकी माँ उन पैसों को अपने बाप के घर से लाती है। उसकी सभी चाचियों को पैसे, धोतियाँ, कमीजें, खाने के लिये गुड़, चूड़े, अँचार सब कुछ उनके बाप भेज देते है! केवल उसी की माँ का बाप अपनी बेटी के लिये कुछ नहीं भेज सकता!—यह अन्याय, यह धूर्त्तता, उसका बाप जिन्दा होता तो कोई नहीं कर सकता! या करता भी तो उसकी भी माँ के बाप के यहाँ से सब कुछ गुड़, चूड़े, धोतियाँ, कमीजें, सभी कुछ आ जातीं। उसका बाप, लोग कहते थे, घर भर में सबसे बलिष्ठ था। गाँव में भी उसके जैसा कोई युवक नहीं था। बालक को यह दृढ़ विश्वास था कि बड़ा होने पर वह भी, अपने पिता ही की तरह घर भर में क्या, गाँव भर में सबसे ज्यादा मज-बूत निकलेगा। उसको यह भी दृढ़ विश्वास था कि मानवों की सन्तति बारह वर्ष की अवस्था में अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लेती है—'छः महीने का कुत्ता, बारह बरस का पुत्ता!' सिर्फ तीन साल की कमी थी! तीन साल जितना जी में आये मार ले, उसकी माँ को भी सता ले! परन्तु उसके बाद?—उसके बाद उसने अपनी टहनी जैसी पतली भुजाओं को फैला कर, मुट्ठियाँ बाँध उनकी मांसपेशियों को इस तरह फुलाया जैसे उनमें मनों की ताकत आ गई हो।

और, मानो अपनी इस ताकत ही को आजमाने के लिये, उसने एक छोटी-सी रोड़ी ले, परले कोने में छप्पर से लटकती हुई एक हँड़िया को इस तरह टीपा कि वह पक से बोल कर कुछ रस्सियों में और कुछ, उसमें रक्खे हुए चनों के साथ जमीन पर आ गई।

तभी दूर से एक आवाज आई—खिलाड़े ले लो, हाथी घोड़ा मोटर और रेल ले लो !

लेकिन लड़के को ऐसा लगा जैसे उसने रबर की उस सुन्दर चिड़िया को इस तरह टीप दिया है कि वह, उन चनों के साथ ही, अब जमीन पर तिलमिला रही है—किन्तु उसे उठाने के लिये वह कभी अपने स्थान से हिलेगा नहीं !

———

अन्ना

मरीज इस वक्त गहरी नींद में सो रहा था।

एक कोने में एक पतली-सी स्प्रिंग की चारपाई पर उसकी बीबी भी सो रही थी।

उसका सिक्रेटरी, उसका कम्पाउन्डर, उसका डाक्टर,—वह कोई बहुत बड़ा आदमी था, मुलाकातियों की भीड़ जब छट जाती थी, तब भी वह जिधर आँखें उठाता उसे आदमी ही आदमी दिखलाई देते, परन्तु इस वक्त सभी सो रहे थे।

वह जब तक जागते रहे थे, सारा कमरा हँसी और मजाक से गूँजता रहा था। उनमें कम्पाउन्डर किंचित लिहाज करता था, परन्तु वह डाक्टर, वह सिक्रेटरी और

एक और दुबला-पतला युवक जिसे सब लोग 'कराका कराका' कह कर पुकारते थे, यह तीनों ही मरीज के साथ अत्यन्त घुटे हुए जान पड़ते थे। वह सबके सब नौजवान और बड़े ही खुशमिजाज थे। इनमें वह दुबला-पतला कराका तो जैसे उनकी पार्टी की जान था। वह अपनी लम्बी नाक के अगले हिस्से पर एक काले फ्रेम का चश्मा लगा, गाँधी जी की सार्वजनिक प्रार्थना के पश्चात् उनके हाथ जोड़ कर मुस्कराते हुये जनता को प्रत्याभिवादन करने और फिर लड़कियों के कंधों के ऊपर हाथ रख कर उनके उठने की एक बड़ी तीखी, किन्तु बड़ी सुन्दर नकल उतारता था। और जब वह सर्जन की लेडी असिस्टैन्ट के मटक-मटक कर चलने और उसकी टकार पूर्ण जनानी आवाज की नकल उतारने लगता था तब तो सारे कमरे में ही एक अजीब दृश्य छा जाता था। मरीज की भी हँसी बढ़ती। परन्तु डाक्टर फौरन उसके पास पहुँच कर उसकी हँसी दबाने के लिये धीरे-धीरे उसके सीने को सहलाने लगता, ताकि उसके टाँकों पर कोई जरब न पहुँच जाय। सिक्रेटरी भी गंभीर हो जाता। उसे अगर मरीज का और कोई अंग खाली न मिलता तो वह धीरे-धीरे उसके बालों ही में खाज करने लगता।

कुछ देर के लिये वातावरण गंभीर हो जाता। मगर

सामने दरवाजे से फिर कोई नर्स, कोई लड़की गुजरती और फिर उनके लतीफे उनके प्रहसन शुरू हो जाते।

परन्तु सोने के ठीक पहले उनमें एक विवाद छिड़ गया था।

डाक्टर कहता था, 'प्रेम' कोई चीज नहीं है। यह स्त्री पुरुष में महज एक धोखे की टट्टी का काम करता है। अगर हम इस टट्टी का आश्रय लेना छोड़ दें, तो निश्चय ही स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध आज की अपेक्षा कहीं ज्यादा दृढ़ और स्थायी होगा। दरअसल, प्रेम संसार में कुछ पागलों को छोड़कर न तो कभी किसी ने किया है और न कोई करता है। यह केवल पुस्तकों में वर्णित एक कल्पना है, जिसकी जीवन की सत्यता से कोई ताल्लुक नहीं। एक साधारण समझदार आदमी के लिये इसकी परिभाषा ज्यादा से ज्यादा यही हो सकती है "कि प्रेम एक प्रकार की स्वार्थ पूर्ण सहृदयता है।"

और सिक्रेटरी कहता था, 'प्रेम' कोई चीज नहीं हैं, इस बात को मैं बिल्कुल नहीं मानता। प्रेम है जरूर, भले ही पुस्तकों में वर्णित इसका रूप न हो। मैं भी रूढ़िवाद में बिल्कुल नहीं विश्वास करता, परन्तु आप सत्य को इन्कार कैसे कर सकते हैं। जब तक हम सूरज की गरमी महसूस करते हैं तब तक हम कैसे कह सकते हैं कि सूरज है ही नहीं? शाम को वह भी तो छिप जाता है, लेकिन इसका

यह मतलब तो नहीं कि उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। वैसे ही अगर आप प्रेम में स्थायित्व न पायें, तो इसका यह मतलब तो कदापि नहीं हो सकता कि प्रेम कोई चीज ही नहीं है।

सिक्रेटरी अपनी बातों पर था, डाक्टर अपनी बातों पर। कराका सोचता था कि सिक्रेटरी ठीक कह रहा है, परन्तु मरीज का खयाल था कि सिक्रेटरी इस मामले में अनुभवहीन है, डाक्टर जो कुछ कह रहा है, ठीक कह रहा है। बहस ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यो बहस करने वालों को खुद समझ में नहीं आता था कि वह क्या कह रहे थे और क्या साबित करना था। फिर भी कराका सिक्रेटरी के पक्ष में था और मरीज डाक्टर के।

परन्तु नर्स अन्ना किसी के पक्ष में नहीं थी। उसने शुरुआत नहीं सुनी थी। शायद, इसीलिए उनके मतभेद का विषय भी उसकी समझ में बहुत कम आता था। वह तटस्थ और चुप थी। परन्तु बहस ज्यों-ज्यों गरम होने लगी, त्यों-त्यों वह डाक्टर, वह सिक्रेटरी, वह मरीज अपने दृष्टि-कोण को बजाय आपस में एक दूसरे को समझाने के वह अन्ना ही को समझाने लगे। अन्ना की परस्थिति उस जज की जैसी हो गई जिसकी खुद की कोई राय न होने पर भी, उसे अपने गंभीर वज़न को किसी न किसी तरफ फेंकना

ही पड़ता है। अन्ना ने भी इस गंभीर वजन का इस्तेमाल किया, परन्तु उसने इस्तेमाल किया उस चंचल और नटखट सिक्रेटरी के खिलाफ जो उसकी तरफ हमेशा मुस्कराती हुई आँखों से देखता था।

उसके निर्णय के साथ ही सारा कमरा एक बार फिर क़हक़हे से गूँज उठा था। सिक्रेटरी उसकी तरफ केवल मुस्कराता हुआ रह गया था।

वह सिक्रेटरी, वह डाक्टर, वह कम्पाउन्डर और वह दुबला-पतला युवक, यह चारों ही अन्ना को बड़े अच्छे लगते थे। वह बड़े ही खुशमिजाज और बड़े ही नेक आदमी जान पड़ते थे। मरीज भी एक भला और दयालु आदमी जान पड़ता था। उसकी आँखें उन धनिकों की-जैसी बिल्कुल नहीं लगती थीं जो शासन की कठोरता से हमेशा भेदभरी और क्रूर दिखलाई देती है। पर क्यों, अन्ना को वह अच्छा नहीं लगता था। शायद उसकी स्थूलता अन्ना की सौन्दर्य कल्पना के अनुरूप नहीं थी। उसके होठ भी उसे मोटे और भद्दे प्रतीत होते थे। वह अन्ना को बिल्कुल नहीं पसन्द था। उसकी बीबी भी उसको बिल्कुल नहीं पसन्द थी। वह ठिंगनी और साँवली थी। उसके पुट्ठे कोल्हू के बेलनों जैसे मोटे थे। आँख भी भीतर की ओर धँसी हुई थी। वह जो कुछ खूबसूरत लगती थी केवल त्वचाओं की सुकुमारता के

कारण। उसके चेहरे पर जो कुछ रौनक थी, सिर्फ दौलत की थी।

परन्तु अन्ना एक लम्बी, छरहरी खूबसूरत लड़की थी। उसमें जो कुछ खामी थी, सिर्फ उसकी नाक किंचित् उठी हुई थी। फिर भी उसका चेहरा बहुत सुन्दर लगता था। उसकी उभड़ी हुई बड़ी-बड़ी आँखें, उसके उन्नत उरोज—जब वह अपने ऊँची एँड़ी वाले जूतों पर चलती थी तो उसके सुन्दर कमर पर यह सब कुछ झूम उठता था।

वह खूबसूरत थी—सभी लोग कहते थे। वह जहाँ जाती बूढ़े दाँत निपोर कर हींहीं करते और युवक उसकी सहायता करने में अपना सर टकरा देते। वह दुबला-पतला कराका जब लेडी डाक्टर की अनूठी नकल उतारता था, तब भी अन्ना को ऐसा महसूस होता था जैसे उसकी तीव्र कला उसकी दाद की एक निकृष्ट भिखारिण हो। डाक्टर मरीज के सो जाने के बाद अँधेरे में अन्ना के कानों के पास झुक कर रात के लिये हिदायतें देता, परन्तु अन्ना उसके हृदय की तेज धड़कन को भी इतना ही सुन सकती थी जितनी कि उसकी हिदायतों को। परन्तु इन सबमें सबसे खूबसूरत था वह सिक्रेटरी। वह लम्बा गोरा और उसके ही जैसे छरहरे बदन का था। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें और

कुञ्चित भौंहें अन्ना को बहुत ही अच्छी लगती थीं। वह औरों की अपेक्षा कहीं अधिक चतुर और वैसे ही नटखट भी था। वह मौका पाकर उसके बालों में फूल की पँखुरियाँ बिखेर देता, उसका बैग गायब कर देता, या धीरे से उसके पैर के अँगूठे दबा देता। पिछले रोज ही उसने चुपके से उसके कानों में कहा था—अन्ना तुम मुझे पूर्णिमा के चाँद जैसी मधुर लगती हो।

उन सब चहकते हुये नवयुवकों के बीच में अन्ना का हृदय गुलाब की झूमती हुई डालों में तितलियों जैसे नाच उठता था। उसे एक इच्छा होती—एक बड़ी विचित्र इच्छा! —पिछले साल उसके भी एक आपरेशन हुआ था। मरीज के इस आपरेशन से कई गुना बड़ा और खतरनाक। उसका सारा पेट खोल डाला गया था। मगर उसके पास एक काली भद्दी-सी मोटी नर्स के अलावा कोई नहीं था—उसे इच्छा होती काश, वह भी बीमार पड़ती और उसको भी कुछ लोग ऐसे ही चारो तरफ से घेरे रहते! कोई उसके पैर के तलवे सहलाता, कोई उसके बाँहों को चाँपता और कोई ऐसे ही ही धीरे-धीरे उसके सीने को सहलाता! वह मरीज के रेशम के चदरों को छूकर सिहर उठती थी। चाँदी के गमलों में डंठलों और पत्तियों के बाहर झुक कर मुस्कराते हुए गुलाब के ताजे-ताजे, लाल-लाल फूल, तारों में छिटकी

हुई वह सुन्दर रात—सारी चीजें बेतरह खूबसूरत और बेतरह सुहावनी मालूम हो रही थीं।

परन्तु मरीज सो गया, उसकी पार्टी भी सो गई। वह जब तक जागता रहा, वह सब जागते रहे। पिछली रात वह रात भर जागता रहा था। उसके साथ उसके सारे लोग-बाग भी रात भर जागते रहे थे। परन्तु आज वह गहरी नींद में सो रहा था, उसके साथ उसके सारे लोग-बाग भी गहरी नींद में सो रहे थे। वह डाक्टर, वह सेक्रेटरी, वह दुबला-पतला युवक सभी सो रहे थे। उसके हाथ-पैर के तलवों को सहलाने वाले नौकर एक ओर और उसकी वह पार्टी एक ओर। वह कम्बल पर, यह कालीन पर, परन्तु सब वहीं फर्श पर सो रहे थे। बेचारे कम्पाउण्डर को कोई जगह नहीं मिल सकी थी, परन्तु वह एक आर्म कुर्सी ही पर ऐसे खर्राटे भर रहा था जैसे मनों रूई के गल्ले पर सो रहा हो। वह सबके सब सो रहे थे। उन तमाम सोते हुए आदमियों के बीच में नर्स अन्ना केवल अकेली जाग रही थी।

वह एक खिड़की के पास बैठी हुई दूर क्षितिज में उस ओर देख रही थी जहाँ पर पहाड़ी के चिबुक को आसमान थाम लेता था। सामने पहाड़ी पर चढ़ती हुई सड़क से जब कोई मोटर नीचे उतरती, उसकी बत्तियों का प्रकाश

अन्ना के चेहरे पर पड़ता। वह खिड़की से अपना मुँह घुमा कर पीछे दीवाल की ओर देखती। उसके चेहरे का अक्स दीवाल पर पड़ता। उसकी सुन्दर ग्रीवा, घुँघराले बाल और उसकी उठी हुई नाक हूबहू दीवाल पर उतर आती, ठीक वैसे ही जैसे सिनेमा के सफेद परदे पर चिन्तित मुद्रा में नायिका की कोई काली तस्वीर झाँक रही हो। क्षण भर में यह दृश्य गायब हो जाता। दीवाल पूर्ववत् अन्धकार की एक काली रेखा बन जाती। परन्तु अन्ना सिहरती हुई दीवाल के अँधेरे में अब भी देखती रह जाती।

मोटरें आतीं और चली जातीं। परन्तु दूर पहाड़ी के ढालों पर वृक्षों के काले स्तर से उमगी हुई तारों के पुंज जैसी बिजली की बत्तियाँ, बगल में किसी ऊँचे महल की झाँकती हुई खिड़कियाँ, नीचे कुछ सहजन के पेड़, झौव्वों के कुछ गुम्बद; तारों में छिटका हुआ आसमान और आम्र मंजरियों की उड़ती हुई भीनी-भीनी सुगन्धि फिर भी शेष रह जातीं। यह सारी चीज़ें बेतरह खूबसूरत और बेतरह सुहावनी मालूम हो रही थीं, परन्तु उसका अकेलापन उसे खाये जैसे जा रहा था। उसे इच्छा होती उन सोये हुये आदमियों में से कोई भी उसके साथ जागता— वह डाक्टर, वह सिक्रेटरी या वह कराका—कोई भी, जो सिर्फ उसके साथ आसमान में उन छिटके हुए तारों की ओर चुप-चाप देखता रहता।

कोई भी ऐसा होता जिसे वह नारियल की हिलती हुई पत्तियों की परछाईं सड़क पर दिखला सकती। जब पहाड़ी पर से कोई मोटर नीचे उतरती, वह सोचती काश, उनमें से कोई उस दीवाल पर पड़ते हुए अक्स को देख सकता!—वह जरूर उसके कानों में कहता—'आह ऐनी तुम कितनी सुन्दर हो' लेकिन वह सब सो रहे थे—वह रात भर ऐसे ही सोयेंगे। उन तमाम सोते हुए आदमियों के बीच में नर्स अन्ना केवल अकेली जाग रही थी—उसे रात भर ऐसे ही जागना था।

परन्तु थोड़ी ही देर में उसकी आँखें नींद से जैसे ढेले-ढेले हो गईं। रात रात भर का जागना यद्यपि उसकी ड्यूटी का एक बहुत साधारण अंग बन चुका था, फिर भी उस रोज उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे रात भर जागने में उसकी पूरी कमर टूट जायगी। उसने किंचित् ख़्याल किया—मरीज का उसको कुछ भी भय नहीं मालूम हुआ। भय केवल सर्जन का था। परन्तु उसका भी चक्कर लग चुका था–उसके बाद नर्सें इस खूँखार जानवर से कुछ बेफ़िक्र सी हो जाती थीं। उसे कुछ हिम्मत-सी मालूम हुई।

उसने अगल बगल की दो कुर्सियों को धीरे से खिसका कर इकट्ठा किया। एक कुर्सी कुछ नीची और ज्यादा चौड़ी थी, दूसरी ऊँची और कम चौड़ी थी। नीची वाली कुर्सी में पैर मोड़ कर बैठते हुए उसने दूसरी कुर्सी की बाँह पर सर

रख कर एकबार लेटने की आजमायश की। परन्तु नीची वाली कुर्सी की बाँह सीधे उसके कोट में गड़ रही थी। उसने उठ कर एक बार इधर-उधर नज़र दौड़ाई। मरीज की पत्नी के चारो तरफ तकियों का एक अम्बार-सा लगा हुआ था। उसकी साड़ी भी खिसक कर ऊपर की ओर सिमट गई थी, जिससे उसके पैर जंघों तक नंगे हो रहे थे। अन्ना ने पहले उसकी साड़ी को आहिस्ता से खींच कर उसके पैरों को ढँक दिया, फिर उसकी तकियों में से धीरे से एक तकिया निकाल लिया। उसका गिलाफ यद्यपि सूती ही कपड़े का था, परन्तु वह रेशम की तरह मुलायम लगता था। उसका स्पर्श अन्ना को इतना सुहावना मालूम हुआ कि उसने क्षण भर के लिये उसे अपने गालों से चिपका लिया। फिर उसने तकिये को कुर्सी पर रख दिया और अपनी किश्तीनुमा पोलिश टोपी को उतार कर बगल के टेबिल पर रखते हुए उसने अपने घुटने नीचे कुर्सी के सहारे टेक दिया,—

'ओ मेरे खुदा!' उसने अपनी कैथोलिक प्रार्थना का ध्यान किया, 'मैं तेरे सारे, खास कर आज के उपकारों के बदले में धन्यवाद देती हूँ। मुझसे आज जो कुछ पाप हुए हों उन्हें देखने के लिये मुझे प्रकाश और वह शक्ति दो जिससे मैं उनके लिये सचमुच पश्चात्ताप कर सकूँ। ओ मेरे खुदा, तुझे कष्ट देकर मैं बहुत दुःखी हूँ। मैं तुझे अपने सम्पूर्ण हृदय से प्यार

भागने की कोशिश की, युवक ने लपक कर उसे अपनी बाँहों में उठा लिया। युवती के पास फिर कोई चारा नहीं रहा। उसने अपने हाथ युवक के गले में डाल दिये। युवक ने उसे किंचित ऊपर उठाते हुए उसके होठों को एक बार फिर चूमा और फिर चूमते ही हुए वह कमरे के भीतर चला गया। अन्ना की कुहुनियाँ खिड़की के चौखटे पर काँपती रह गईं। उसके गाल उसकी काँपती हुई उँगलियों के बीच में जैसे गरम तवे पर चढ़ गये।

क्षण भर में कमरे का दरवाजा बन्द हो गया। परन्तु खिड़कियों के मोटे शीशे देर तक प्रकाश में चमकते रहे। और देर तक अन्ना धड़कते हुए हृदय से उनकी ओर देखती रही। परन्तु उसे फिर कुछ नहीं दिखलाई दिया, सिर्फ एक बार अचानक सारे शीशे अंधकार में आ गये।

उसने घूमकर पीछे की ओर देखा। चारों तरफ से सी-सी, घर्र-घर्र की आवाजें आ रही थीं। उनमें कम से कम तीन नाकें तो बुरी तरह से बोल रही थीं, जिनमें एक तो कम्पाउन्डर की थी और एक नौकरों में से किसी की थी, परन्तु एक सिक्रेटरी, डाक्टर और कराका में से किसी एक की मालूम होती थी। सिक्रेटरी के गोरे चेहरे को वह अंधेरे में भी पहचान सकती थी। उसकी नुकीली नाक उसे दूर से भी साफ दिखाई दे रही थी। वह सबसे इधर सो रहा

था। अन्ना के जी में आया की उसकी नाक पर एक पत्थर दे मारे—'मक्कार!' आज जब वह सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी, तो उसने उसे सीधे आलिंगनों में भी भर लेने की चेष्टा की थी, मगर जब वह झटक कर अलग हो गई थी तो वह ऐसे बगल देकर निकल गया था जैसे यह उसका कोई प्रयत्न ही न रहा हो; उसकी कमर सिर्फ अनजान में उसकी बाँहों में आ गई रही हो—'मक्कार, धूर्त्त!' उसके दाँत जैसे अपने आप पिस उठे।

परन्तु सहसा उसे यह याद आया कि अगर मरीज के कमरे में सोये हुए उसके आदमियों में से किसी की नाक बोल रही हो तो यह नर्सों का कर्त्तव्य होता है कि उसे जगा कर उसका कर बदलवा दें, जिससे मरीज की नींद में खलल न पड़े।

अन्ना दबे पाँव सिक्रेटरी के पास गई। झुककर उसके चेहरे को देखा। उसने चाहा कि उसके बदन को हिला-कर जगा दे, यद्यपि उसकी नाक से केवल सीं-सीं की एक बारीक आवाज आ रही थी। परन्तु उसके पाँव इस तरह काँप रहे थे कि उसे मालूम हुआ कि वह सिक्रेटरी, डाक्टर, कराका, मरीज, और उसकी पत्नी अभी सबके ऊपर गिर पड़ेगी। वह जल्दी से वापस लौट कर कम्पाउन्डर के पास गई। उसके घुटनों को अपने काँपते हुए हाथों से झक-

झोर कर कहा—'कम्पाउन्दर तुम्हारी नाक बुरी तरह बोल रही है। अपना कर बदल डालो।' बगल में किसी घरोंते हुए आदमी के साँस खाँसी से घुट गये। अन्ना तेजी से अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गई। उसने अपने हाथ की उँगलियों को एक दूसरे में गूँथ कर उनमें शक्ति लाने की चेष्टा की। परन्तु उसका दम जैसे फूल गया। वह लगभग पन्द्रह मिनट तक वैसे ही काँपती रही।

धीरे-धीरे उसकी कँपकपी थम गई। उसकी नसों में दौड़ता हुआ खून जम गया। परन्तु उसने फिर 'पवित्र मेरी' को माँ बनने का आह्वान नहीं किया। उसे दूर क्षितिज में पोलेन्ड की पहाड़ियों में चीड़ और सनोवर के वृक्षों में सिमटा हुआ एक छोटा सा लाल रंग का बँगला दिखाई दिया, जिसकी लकड़ी की रेलिंग के सहारे झुकी हुई एक अधेड़ सुनहले बालों वाली औरत उसे रोज स्कूल से वापस लौटते वक्त दूर सड़क ही में से दिखलाई देती—लाड़िली ऐनी का चेहरा खिल उठता, वह दूर ही से हवा में हाथ हिला-हिला कर उसका अभिनन्दन करती। और जब काठ की सीढ़ियों से खट-खट करती हुई ऊपर पहुँचती तो वह उसके मुख को चुम्बनों से इस तरह भर देती जैसे वह कोई बरसों की बिछुड़ी हुई हो। वह बँगला, वह माँ, वह स्कूल के दिन और वह चहकती हुई ऐनी—क्षितिज के उस कोने में

अन्ना को जैसे यह सारी चीजें दिखलाई दे रही हों। उसके जी में आया काश, वह माँ के दामन को कहीं एक बार भी फिर वैसेही थाम लेती। परन्तु उफ़, वह माँ, वह बँगला, वह स्कूल की टीचरें, सब जर्मन गोलों के पेट में चले गये थे। उनके धुँए को उठते हुए उसने पाँच साल पहले देखा था।

उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। उसका चचेरा भाई भी लड़ाइयों में मारा जा चुका था। वह बिल्कुल अकेली थी। उसका संसार में अब कोई नहीं था। बचपन में उसकी माँ उसकी ठोढ़ी को हिला कर अक्सर कहा करती थी—मेरी लाड़िली ऐनी के हाथों को शाहजादे चाहेंगे। वह ठीक ही कहती थी। पिछले छः बरसों में उसके हाथों को किसने-किसने नहीं चाहा? किसने-किसने पागलपन और आत्म-हत्या का दम नहीं भरा? परन्तु मक्कार दुनियाँ!

———

वादा

पिछले रोज पेरिन ने उससे आज ठीक बारह बजे एक लोकल स्टेशन पर मिलने का वादा किया था।

पेरिन का यह वादा सुबह ही से नौशिर के मस्तिष्क में हर पन्द्रह-बीस मिनट में एक बार घूम जाता था। यदि किसी काम में लग कर कुछ देर के लिए भूल भी जाता, तो वह कभी-कभी अत्यन्त चौंक कर के भी इस वादे का खयाल करता—उसे भय था, कहीं बहुतेरे छोटे-मोटे वादों की तरह यह वादा भी सहसा विस्मृत न हो जाय। पेरिन का वह छोटा-सा वादा उसके मस्तिष्क में एक हल्की-सी सिहरन पैदा कर देता था। वह विजय का एक मीठा-सा उल्लास

महसूस करता—पेरिन ने कम से कम उस वादे को अत्यन्त गुप्त रूप से पूरा करने का वचन दिया था।

कुछ तो इस भय से कि यदि कहीं थोड़ी-सी भी देर हो गई, तो बहुत मुमकिन है, पेरिन फिर दूसरी ही ट्रेन से वापस भी चली जाय और कुछ उस समय का, जो उसे पैदल, चलने में लगता था, गलत अन्दाजा लगाने के कारण वह समय से पहले ही स्टेशन पर पहुँच गया था। उसने स्टेशन के इस पार से उस पार जाने वाले पुल पर खड़ा होकर दोनों प्लैटफार्मों को एक बार गौर से देखा, फिर रेलिंग पर झुक कर स्टेशन की बड़ी घड़ी में देखा—बारह बजने में अभी ठीक चालीस मिनट की देर थी। इतनी देर पहले पेरिन की आशा करनी ही बेवकूफी थी। वह लाइन के पार स्टेशन की दूसरी तरफ चला गया था।

धूप कड़ी थी, परन्तु इस ओर प्लैटफाम की ऊँची दीवाल की आड़ में कुछ छाया मिल रही थी। वह एक जगह दीवाल से पीठ टेक कर खड़ा हो गया। बगल में एक खोमचे वाले ने उसकी ओर कुछ उत्सुकतापूर्वक देखा, परन्तु उसने अपना मुँह दूसरी तरफ फेर लिया। सामने ही घोड़ा-गाड़ी वालों की एक लम्बी कतार लगी हुई थी। सभों ने आगन्तुक की तरफ प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। लेकिन जब वह किसी की ओर मुखातिब नहीं हुआ, तो वह सब फिर आपस में गपशप लड़ाने लगे।

ग्यारह बज कर बत्तीस पर एक ट्रेन आई। पेरिन की अब भी आशा करना व्यर्थ था। परन्तु नौशिर ने प्लैटफार्म से बाहर निकलने वाली भीड़ को उत्सुकता से देखा। पहले बाबुओं का, फिर शरीर से कुछ कमजोर बूढ़े और बुढ़ियों का और फिर बँहगी पर दूध के बड़े-बड़े पीतल के मटके रक्खे हुए ग्वालों का झुण्ड फाटक से बाहर हो गया। थोड़ी ही देर में वहाँ फिर धूप की वही सख्ती और घोड़े-गाड़ी वालों के वही गपशप शेष रह गये। नौशिर ने एक बार दूर तक देखा, उसके जैसा कोई भी सफेदपोश व्यक्ति वहाँ खड़ा दिखाई न दिया। वह फिर पुल की दूसरी तरफ चला आया।

परन्तु इधर दीवाल की वह छाया नहीं थी। दूसरे, पेरिन के घर की तरफ से आने वाली ट्रेन भी इस ओर के प्लैटफार्म पर नहीं लगती थी। वह फिर उस कड़ी धूप में पुल की सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चढ़ने लगा। वह मुश्किल से पाँच-छः सीढ़ियाँ चढ़ा होगा कि एक ट्रेन इस ओर के प्लैटफार्म पर आती हुई दिखाई दी। नौशिर संदेह में पड़ गया—क्या पता पेरिन अपने घर से न चल कर, कहीं इसी ओर से आ रही हो? उसने यह तो नहीं बताया था कि वह घर ही से आयेगी। वह लौट पड़ा।

धीरे-धीरे मुसाफिरों की वह भीड़ भी निकल गई थी।

पेरिन नहीं आई थी। अभी उसके आने का समय भी नहीं हुआ था। नौशिर फिर पुल के पार चला गया।

उसे दोनों ओर के ट्रेनों का देखना आवश्यक था। इस लिये जब भी कोई ट्रेन आती, वह पुल के इस पार से उस पार जाता। ट्रेन से उतरने वाले तमाम मुसाफिरों को एक-एक कर के देख जाता। ट्रेन चली जाती, वह फिर लौट कर पुल की तपती हुई रेलिंग से झुक कर दोनों ओर के प्लैटफार्मों को भी देख जाता। उस तीखी धूप में उसका चेहरा आग से-जैसे झुलस उठा। पाँच ट्रेनें इस ओर से और पाँच ट्रेनें उस ओर से और आईं और चली गईं। बारह बज कर चालीस मिनट हो गये। परन्तु पेरिन किसी ओर से नहींआई।

वह नहीं आई थी। वह अब आ भी जाती, तो भी किसी काम का नहीं होता। नौशिर की भौंहें सिकुड़ गई थीं। उसकी जुबान सूख गई थी। उसका जोश भी उस तीखी धूप में जैसे झुलस उठा था। उसे कम विश्वास होता था कि यदि पेरिन आ गई, तो वह अपने उन आन्तरिक प्रेरणाओं को उस पर प्रकट कर सकेगा जो इस वादे का खास अभिप्राय था। पेरिन के न आने का भी उसे कोई अफसोस नहीं हुआ। उसे पहले से भी संदेह था, पेरिन अपने वादे की पक्की निकलेगी। नौशिर को उसकी दो-एक बातों में पहले भी पता लग चुका था।

बारह बज कर पैंतालीस पर पेरिन की तरफ से एक गाड़ी फिर आती थी। नौशिर ने इस गाड़ी का भी इन्तजार कर लेना अच्छा समझा। सिर्फ पाँच मिनट की देर थी—वह लगभग एक फर्लांग जाकर वापस लौट आया।

परन्तु अबकी बार वह पुल के पार नहीं गया था। स्टेशन के सामने ही एक लम्बा-चौड़ा मैदान था, जिसमें पहले फौजी सिपाहियों के खेमे थे, परन्तु अब बिल्कुल खाली पड़ा हुआ था। उसके बीच-बीच से निकली हुई सड़कें अब भी पोख्ती और बिल्कुल नई जैसी लगती थीं। स्टेशन के फाटक के बिल्कुल सामने, सड़क की मोड़ पर बिजली के एक मोटे सिमेन्ट के खम्भे की ओट में तीखे सूरज से कुछ राहत मिल रही थी। नौशिर उसकी आड़ में सर छिपाये—यद्यपि यह बुरी तरह जल रहा था, फिर भी उसी से पीठ टेक कर खड़ा था।

थोड़ी ही देर में, पीछे से एक अत्यन्त सुन्दर लड़की अपनी मोटर लिये हुए उसके सामने से गुजर गई। फ़िज़ा एक भीनी सुगन्धि से गूँज उठी। पेरिन की पतली-पतली भुजायें, उसके शरीर की क्षीण बनावट; उसके उभड़े-खभड़े दाँतों को याद कर नौशिर एक तीव्र नफरत से भर उठा। उसके जी में आया उसे तुरन्त वहाँ से चल देना चाहिये। उसे अपने चुनाव पर तरस आया—यह कमीनी लड़की जिसमें

न कोई विशेष शारीरिक सौन्दर्य ही है, न हृदय ही की कोई खास विशालता !

कुछ ही क्षणों में वह कार फिर उसी मोड़ से गुजरी। अबकी बार वह नौशिर के और भी समीप से होकर निकली थी। उस खूबसूरत लड़की की बड़ी-बड़ी आँखें, जो नौशिर की तरफ लगी हुईं ही निकल गई थीं, उसके हृदय तक को छू गईं। वह निश्चय ही मोटर चलाना सीख रही थी, परन्तु नौशिर खड़ा सिर्फ यही अनुमान करता रहा—आखिर वह इतनी धूप में क्यों परीशान हो रही है ? पेरिन के प्रति उस के इरादे में और भी दृढ़ता महसूस हुई—इस कमीनी लड़की से वह आयन्दा किसी प्रकार का संबंध नहीं रक्खेगा !

परन्तु इसी समय वह ट्रेन आ पहुँची जिसके लिये वह एक फर्लांग जाकर घूम आया था।

उसने पहले ही की तरह इस ट्रेन से भी उतरने वाले मुसाफिरों की प्रतीक्षा की।

पेरिन इससे भी नहीं आई। परन्तु नौशिर को तनिक भी अफसोस नहीं हुआ, बल्कि वह अपने निश्चय पर खुश हुआ कि एक बला से हमेशा के लिये छुट्टी मिली। उसे अपना सर भी हल्का मालूम हुआ था।

शाम को नौशिर अपनी बालकनी की रेलिंग पर झुका हुआ नीचे सड़क में देख रहा था। पेरिन रोज शाम को

उसके यहाँ बैडमिण्टन खेलने आया करती थी। लड़कियों में से जिस रोज कोई लड़की नहीं आती थी उस रोज नौशिर भी उनके खेल में शरीक हो जाया करता था। पेरिन इस दल की एक नई खिलाड़ी थी। उसे खेलना भी अभी अच्छी तरह नहीं आता था। परन्तु बैडमिण्टन का वह सारा खेल नौशिर को विशेषतः इसी पेरिन के कारण दिलचस्प मालूम होने लगा था। वह अक्सर जब पेरिन के आने में देर होती तो अत्यन्त चंचल हृदय से अपनी बालकनी की रेलिंग पर झुका हुआ दूर, मोड़ से निकलने वाली लाल बसों की राह देखता था। और जब भी कोई ऐसी बस उस मोड़ से निकलती, वह बालकनी पर खड़ा-खड़ा तब तक उसकी इन्तजारी करता जब तक कि वह सामने वाले बस-स्टाप पर रुक कर आगे न निकल जाती। परन्तु आज वह लाल बसों की ओर नहीं देख रहा था। वह नीचे सड़क के इधर वाले फुटपाथ पर बच्चों का किलकना देख रहा था।

बाहर की सुहावनी संध्या, दूर ताड़ के वृक्षों में छिपता हुआ सूरज और समुद्र के किनारे-किनारे फुटपाथ पर रंग-विरंग की साड़ी और फ्राकों में चहकते हुए बुलबुलों की जैसी सूरतें उसे निमंत्रण देती हुई जान पड़ीं। वह अब बालकनी की रेलिंग से लौटना ही चाहता था कि सहसा सामने वाले बस-स्टाप पर एक लाल बस किर्-किर्-किर् करती हुई रुक

गई। उससे उतरने वाले मुसाफिरों में पेरिन भी दीख पड़ी। नौशिर के अन्दर सहसा एक उबाल आ गया। उसका हृदय धड़कने लगा। वह ड्राइंगरूम में आकर एक सोफे पर बैठ गया।

कमरे में इतनी शान्ति थी कि बिजली की घड़ी के चलने की आवाज बिल्कुल साफ सुनाई दे रही थी। घड़ी में देख कर नौशिर को ताज्जुब हुआ, पेरिन आज इतनी देर से कैसे? देखते-देखते पेरिन ड्राइंगरूम के सामने से गुजर गई। वह बंद गले की एक नई फ्राक पहने हुए थी, जो उसके पतले गर्दन पर खुलती हुई बड़ी अच्छी लग रही थी। वह बाहर से देखने में जितनी सीधी-सादी लगती थी, उतनी ही भीतर से चुलबुली थी। नौशिर उसके स्वभाव के इस दुहरेपन पर घृणा से भर गया। रोजाना उसका जैसे वह अभिवादन करता था, उसकी आज उसने कोई जरूरत ही नहीं समझी। वह निश्चल भाव से वैठा रहा।

थोड़ी ही देर में पेरिन उधर से रैकेट लिये हुए ड्राइंगरूम के सामने से फिर गुजरी। अबकी पेरिन और नौशिर दोनों ने एक दूसरे को देखा। परन्तु उन दोनों में से किसी ने भी किसी का अभिवादन नहीं किया। पेरिन ने सिर्फ गर्दन नीची कर ली और क्षण भर में सीढ़ियों से खट-खट करती हुई नीचे चली गई। नौशिर केवल उसकी ओर देखता रह

गया—कुछ रोष, कुछ घृणा और कुछ आश्चर्य के साथ। उसे ताज्जुब हुआ, पेरिन ने भी उसका अभिवादन नहीं किया! उसने सोच रक्खा था—पेरिन जब उससे माँफी माँगेगी, तो वह यह खुशी जाहिर करेगा, अच्छा हुआ कि वह नहीं आई थी, क्योंकि उस वादे को वह खुद ही बिल्कुल भूल गया था। उसने निश्चय कर रक्खा था, वह पेरिन को यह नाज करने का मौका हरगिज न देगा कि नौशिर उसके इशारों का गुलाम है! परन्तु ऐसा न हुआ। पेरिन ने उसके लिये अफसोस भी नहीं जाहिर किया।

नौशिर को अपना पिछला निश्चय फिर याद आया—वह पेरिन से कोई वास्ता न रक्खेगा। फिर उसने माफी माँगी या न माँगी, इससे उसका क्या मतलब? उसने पेरिन की एकदम उपेक्षा कर देनी चाही। वह एक बार फिर बालकनी पर आ खड़ा हुआ। दूर ताड़ के झुरमुटों के पीछे सूरज और बादलों का वही सुनहलापन, समुद्र की लहरों को छूकर आने वाली हवा में वही मस्ती! परन्तु नौशिर को बाहर के यह सब आकर्षण फीके जान पड़े। नीचे फुटपाथ में किलकते हुए बच्चों के खेल में भी उसे कोई दिलचस्पी नहीं मालूम हुई। पेरिन की वह बेरुखी उसे एक नई चोट जैसी महसूस हुई।

खुद की वह परीशानी और पेरिन की यह बेफिक्री उसे

काँटे की तरह चुभने लगी। उसके हृदय ने इस अपमान का यकायक एक प्रतीकार ढूँढ़ लेना चाहा—वह पेरिन को किञ्चित् भी ठेस पहुँचा सकता! उसकी अन्तरात्मा इस नीचता के लिये एक बार भी लज्जित की जा सकती! उसे सब्र हो जाता। उसके घाव भर जाते। इसके बाद नौशिर एक रास्ते पर होता, पेरिन एक रास्ते पर।

उसने घूमने जाने का इरादा बिल्कुल छोड़ दिया। कुछ देर तक योंही बेचैनी से बैठा रहा। फिर एक चुभते हुए ताने को मन में बिठाया और बैडमिण्टन लान की ओर चल पड़ा।

पेरिन ने अभी खेलना शुरू नहीं किया था। वह एक कुर्सी पर बैठी हुई चलते हुए खेल के खतम होने की इन्तजारी कर रही थी। नौशिर ने चाहा झुक कर धीरे से अपनी बात कह दे। परन्तु खेल बड़ी सरगर्मी से चल रहा था। पेरिन बड़ी उत्सुकता से देख रही थी। ऐसी मनोदशा में निश्चय ही उसका व्यंग अपना पूरा प्रभाव नहीं ला पता। उसकी हिम्मत न पड़ी। वह एक लड़की को शाबाशी देता हुआ वापस चला आया।

लौट कर वह कुछ देर तक इधर-उधर घूमता रहा। परन्तु उसका ध्यान बराबर पेरिन की ओर लगा रहा। उसे भय था, पेरिन कहीं चुपके से उधर ही से न चल दे। फिर

अगले रोज तक तो पेरिन के सारे कसूर बासी पड़ जायेंगे। वह फिर लान की ओर चल पड़ा।

वह खेल खतम हो गया। अगले खेल में शरीक होने के लिये पेरिन ने ज्योंही उठना चाहा; त्योंही नौशिर ने पीछे से उसकी कुर्सी के ऊपर झुक कर धीरे से कहा—पेरिन, दोपहर की तकलीफों के लिये धन्यवाद !

पेरिन ने उलट कर उसकी ओर देखते हुए कहा—ओह, इसका मुझे बहुत अफसोस है। क्षमा कीजियेगा।

नौशिर इससे ज्यादा उसके पास खड़ा नहीं रह सकता था। वह फिर टहलने लगा। पेरिन ने भी खेलना शुरू कर दिया।

परन्तु पेरिन के उत्तर से नौशिर को बिल्कुल संतोष नहीं हुआ। उसकी क्षमा-याचना में उतना भी अफसोस नहीं जाहिर किया गया था, जितना कि रास्ता चलते हुए किसी मुसाफिर से अनजान में धक्का लग जाने पर किया जाता है।

उसका मतलब पूरा नहीं हुआ वह बड़ी बेचैनी से कुछ देर तक घूमता रहा। पेरिन इसे अब भी एक मामूली-सी भूल समझ रही थी। वह इसके असल तथ्य को शायद कभी, जिन्दगी भर भी, नहीं समझ सके—नौशिर को यह खयाल बड़ा दुखद मालूम हुआ। नहीं, उसे अपनी अशिष्टता की पूरी जानकारी होनी चाहिये, अपनी नीचता उसे अच्छी

तरह महसूस होनी चाहिये—उसने अपनी दोपहर की परीशानी को कड़े और विशद रूप में जिक्र करने का निश्चय किया।

जाते वक्त पेरिन ने ज्योंही सीढ़ियों से खटखट उतरना चाहा, त्योंही पीछे से एक चुपके की आवाज आई—'पेरिन !'

पेरिन रुक गई। नौशिर इसी मौके की इन्तजार कर रहा था। खेल खतम होने के बाद और लड़कियाँ तो लान ही से वापस चली जाती थीं, परन्तु पेरिन अपना रैकेट ऊपर रख कर जाती थी।

सीढ़ियों पर गहरी खामोशी छाई हुई थी। बाहर शाम का अँधेरा यद्यपि अभी सिर्फ घना हो रहा था, पर घरों के भीतर पूरी रात जैसे मालूम हो रही थी। ऐसे समय और ऐसे एकान्त में, एक नवजवान लड़की से मिलते हुए नौशिर को किञ्चित् भय-सा मालूम हुआ। उसने प्रायः धड़कते हुए हृदय से कहा—'पेरिन, आज तुम आई क्यों नहीं ? जानती हो, मैंने डेढ़ घण्टे तुम्हारी इन्तजारी की ! उफ़, वह भयंकर धूप ! सर जलने लगा था !—इसी लिये आफिस भी आज नहीं गया।

पेरिन की बड़ी-बड़ी आखें आश्चर्य से और भी बड़ी-बड़ी हो आईं। वह नौशिर के करीब खिंचती हुई बड़े अफसोस की आवाज में बोली,—'सच ? ओह, इसका मुझे बेहद

अफसोस है। मैं जरूर आती, पर माँ की तबीयत सख्त खराब हो गई थी। पेट में दर्द होने लगा था। उनको अकेली छोड़ कर कैसे आ सकती थी। लोग क्या सोचते? और कोई घर में था भी नहीं, वर्ना मैं जरूर आती। उफ मुझे सख्त अफसोस है नौशिर!

उसके 'नौशिर' कहते हुए नौशिर को ऐसा लगा जैसे प्यार का फूल झड़ रहा हो। पेरिन का यह विवरण झूठा हो सकता है या सच्चा—यह सोचने की उसे बिलकुल इच्छा नहीं हुई, यद्यपि उसकी माँ रोज बीमार रहती थी और रोज वह बैडमिण्टन खेलने आया करती थी। नौशिर उस बिजली के प्रकाश में सिर्फ पेरिन के गोरे चेहरे का, उसकी बड़ी-बड़ी आखें का और एक लड़की के कोमल स्वरों का जादू महसूस कर रहा था। पेरिन उसके इतने करीब खिंच आई थी और इतने धीरे-धीरे बोल रही थी, जैसे उसने पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया हो।

नौशिर के जी में आया, उसे अपनी बाहुओं में भर ले या बिल्कुल करीब फड़कने वाले उन लाल-लाल होठों को चूम ले। परन्तु वह डरा—यह स्थान बड़ा ही अरक्षित था, दूसरे, पेरिन की प्रतिक्रिया भी अनिश्चित थी। वह एकदम काँपता हुआ पेरिन की ओर चुपचाप देखता रहा।

कुछ क्षण के बाद उसने फिर बड़ी मुश्किल से कहा—पर तुमने फोन क्यों नहीं कर दिया ?

पेरिन ने उसी अदा में फिर कहा—पर फोन मेरे यहाँ कहाँ है ? अगर फोन ही होता तो तुम्हें इतनी तकलीफ क्यों उठानी पड़ती ।

नौशिर फिर कुछ भी न बोल सका । उसका हृदय पूर्ववत् धड़क रहा था ।

पेरिन भी कुछ क्षण तक चुपचाप खड़ी रही । फिर उसने कहा—अच्छा, अब देर हो रही है, मैं चलती हूँ ।

नौशिर ने चाहा उसे कुछ देर और रोक लें । परन्तु वह रोक न सका । पेरिन सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी । उसने सिर्फ काँपते हुए एक बार और पूछा—फिर कब मिलोगी ?

'मैं कल कहीं से फोन करके बता दूँगी', पेरिन ने पीछे घूम कर कहा और क्षण भर में वह खटखट नीचे पहुँच कर आँखों से गायब हो गई ।

नौशिर निस्तब्ध और निश्चल भाव से उसकी ओर देखता रहा । उसका हृदय पहले से भी तेज धड़कता रहा । जब वह आँखों से ओझल हो गई, तो उसने एक लम्बी साँस ली—और उसकी आँखें अनायास आने वाले कल की ओर उठ गईं ।